बुद्धिवादी प्रकाशन

निम्न पुस्तकों की पाण्डुलिपि लिखकर तैयार है यथासम्भव शीघ्र प्रकाशित होंगी।

(१) **तर्कशास्त्र का प्रारम्भिक अध्ययन**—सत्यासत्य निर्णय के लिये तर्कशास्त्र का आधार अनिवार्य है। बिना इसके कोई व्यक्ति किसी विषय पर ठीक से विचार नहीं कर सकता और न प्रतिवादी के वाक्छल एवं हेत्वाभासो को ही समझ सकता है। प्रस्तुत पुस्तक मे युक्ति-तर्क सम्बन्धी पौर्वात्य और पाश्चात्य दोनों प्रणालियों का सरल शिक्षात्मक विवेचन है जिसका अध्ययन-मनन प्रत्येक तत्त्व-जिज्ञासु के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इससे सत्यानृत-विवेक-बुद्धि प्रखर हो कर तत्त्व निर्णय मे आत्मनिर्भरता आती है। मूल्य १) रु०

(२) **क्या ईश्वर है?** इसमे ईश्वर के अस्तित्व और उसके जगत् कर्तृत्व सम्बन्धी जितने मतवाद प्रचलित है, प्राय इन सभी का विशद विवेचन और सयुक्तिक खण्डन है। प्रसङ्गानुसार वेद, उपनिषद्, कुरान, बाइबल और जैन, बौद्ध आदि सभी शास्त्रों की निर्भयता पूर्वक समालोचना की गई है। इस विषय की शायद ही कोई ऐसी युक्ति-प्रयुक्ति बची हो जिसपर इसमे विचार न किया गया हो। मूल्य १) रु०

(३) **क्या आत्मा अमर है ?**—इसमे आस्तिक नाम-धारी सभी पौर्वात्य दर्शनो—खासकर गीता न्याय और जैन धर्म की जीव-आत्मा सम्बन्धी सैद्धान्तिक कल्पनाओं की निर्भीक समालोचना की गई है। थियासोफी और स्वाम-

[illegible]

'नवयुवक'

किया। वह टिप्पणी यथास्थान इस पुस्तक में प्रकाशित कर दी गई है। इधर अनेक सज्जनों ने मुझसे मेरे उद्देश्य को बतलाने के लिये विशेष आग्रह किया तब मैने जनवरी सन् १९४२ के लेखमे मेरे उद्देश्य को प्रकाशित करते हुए बतलाया कि जैन शास्त्र ही एक ऐसे शास्त्र है जिनसे कोई कोई यह भाव भी प्रमाणित करते है कि भूख प्यास से मरने हुवे को अन्नपानी की सहायता से बचाना, गरीब दुःखी, विपत्तिग्रस्त को सहायता करना अस्वस्थ माता पिता, पति आदि की सेवा सुश्रुषा करना, रोगियों की चिकित्सा के लिये चिकित्सालय खोलना, शिक्षा प्रचार के लिये शिक्षालयों का प्रबन्ध करना आदि संसार के ऐसे सब प्रकारके परोपकारी कामों को एक सद्गृहस्थ द्वारा निस्स्वार्थ भावसे किये जानेपर भी उस गृहस्थ को एकान्त पाप होता है। इन भावों के प्रचार का असर आज जैन कहलाने वाले हजारों व्यक्तियों के हृदय पर हो चुका है। शास्त्रों को सर्वज्ञ प्रणीत एवम् भगवान के वचन मानकर उनके वचनों को अक्षर अक्षर सत्य माना जा रहा है और उनके विधि-निषेधों को आंख मूंदकर अमलमे लाना कल्याणकारी समझा जाता है।

मानव समाज परस्पर सहयोग के विना चल नहीं सकता। जीवनमे पग पगपर अन्यके सहयोग की आवश्यक्ता होती है। समाजकी रचना और व्यवस्था ही इस लिये हुई है कि परस्पर के सहयोग द्वारा नानातरह की सुख-सुविधाएं प्राप्त करके सामुहिक एवम् व्यक्तिगत जीवन को अधिकसे अधिक सुखी बनाया

जा सके। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जिस सहयोग मे किसी प्रकारका अपना ऐहिक स्वार्थ होता है उसे तो प्रत्येक व्यक्ति विना किसी प्रेरणा के भी आदान प्रदान करनेकी चेष्टा करता है, परन्तु जिसमे अपना ऐहिक स्वार्थ कुछ भी नहीं होता उसके लिये पुण्य और धर्म जैसे शुभ लाभ व आकर्षण की प्रेरणा के विना—भला कोई कुछ किस लिये करेगा? यानी कतई नहीं करेगा। इसलिये भूख प्यास से मरने वाले को अन्नपानी की सहायता से वचाने, विपत्तिग्रस्त की सहायता करने, रोगियो की चिकित्सा के लिये चिकित्सालयो का प्रवन्ध करने आदि ससार के ऐसे कामो मे यदि अपना कोई ऐहिक स्वार्थ नहीं होता हो अथवा कोई सामाजिक सम्बन्ध नहीं रखता हो तो किस लाभ और आकर्षण के लिये एक गृहस्थ व्यर्थ ही इस प्रकारके कामो मे प्रवृत्ति करके पापो का उपार्जन करेगा और उन पापो के फल स्वरूप अनन्त दुःख भोगेगा। कोई भूख प्यास से मरता है तो भलेई मरे और कोई विपत्ति भोग रहा है तो भलेई भोगे। उसे क्या पड़ी है कि वह उसमें दखलन्दाजी करके पाप उपजावे और फलस्वरूप अपने आपको व्यर्थ ही दुःखी वनावे। इस समय जैन कहलाने वालों की करीव १४ लाख की सख्या है जिसमे करीव ४-५ लाख तो दिगम्बर जैन कहलाते हैं जो इन शास्त्रों (आगम सूत्रों)को नहीं मानते, परन्तु वाकी शेष श्वेताम्बर कहलाने वाले समस्त जैन इन आगम-सूत्रों को मानते हैं जिनके किन्हीं पाठों से ऊपर कहे हुए

(संसार के सार्वजनिक लाभ के कामों को निस्स्वार्थ भाव से करने पर भी गृहस्थ को एकान्त पाप लगे—ऐसे भाव पुष्ट होने की कचित सम्भावना है। यद्यपि आगम सूत्रो को मानने वालों मे भी सभी इस प्रकार एकान्त पाप होना नहीं मानते, परन्तु एकान्त पाप मानने वालों की सख्या भी इस समय कई हजारों तक पहुच चुकी है।

मुझे ऐसा लगा कि इस प्रकार के भावों का प्रचार न केवल मानव समाज के हितो के लिये ही घातक है अपितु संसार के इतर प्राणियों के लिये भी अत्यन्त हानि कारक है। इस लिये मनुष्यत्व के नाते ऐसे शास्त्रों को अक्षर अक्षर सत्य मानने की अन्ध-श्रद्धा को भग करना नितान्त आवश्यक है। और इसके लिये एक ही उपाय है कि शास्त्रों मे आये हुए प्रत्यक्षमे असत्य प्रमाणित होनेवाले विषयो को सर्व साधारण के समक्ष रखा जाय, ताकि जन-साधारण का मस्तिष्क अन्ध-श्रद्धा को तिलाजलि देकर बुद्धिवाद को ग्रहण करने मे समर्थ हो सके। मेरा यह विश्वास है कि प्रस्तुत पुस्तक मे जितनी सामग्री दी जा चुकी है यदि न्याय और बुद्धि पूवक उनपर विचार किया जाय तो शास्त्रों को अक्षर अक्षर सत्य मानने की अन्ध श्रद्धा को मस्तिष्क से हटा देने के लिये पर्याप्त है। यद्यपि इस मे आई हुई सामग्री शास्त्रो मे पाये जाने वाले असत्य, असम्भव और अस्वाभाविक तथा पूर्वा पर सर्वथा विरुद्ध विषयों की तुलना मे कुछ नहीं के बराबर है तथापि जहां तक अक्षर भी अन्यथा

मानने में अनन्त संसार परिभ्रमण का भय दिखाया गया है वहां यह सामान्य सामग्री भी आशा है उनका उक्त भय-भञ्जन के लिये अवश्य पर्याप्त होगी।

इस लेख संग्रह को पढ़ने पर, आंख मूंदकर शास्त्र नामक पोथियों के प्रत्येक शब्द को 'बाबा वाक्यम् प्रमाणम्' मानने वाले और उनके आधार से संसार के परोपकारी कामों के करने में एकान्त पाप जानने वाले पाठकों के हृदय में यदि कुछ भी परिवर्त्तन हुआ तो मैं अपने इस तुच्छ प्रयास को सफल समझूंगा।

अन्त में, मैं उन सज्जनों को धन्यवाद देता हूं, जिन्होंने मेरे लेखों को पढ़कर मुझे प्रोत्साहित किया। और उन सज्जन-वृन्दों को भी धन्यवाद देना अपना कर्त्तव्य समझता हूं जिन्होंने अन्ध-श्रद्धालु होते हुए भी मेरे लेखों को पढ़कर उनमें प्रदर्शित भावों को कड़वी घूंटकी तरह निगल कर हजम कर गये और खामोश रह कर अपने धैर्य्य का परिचय दिया। धन्यवाद के समय 'तरुण जैन' के सम्पादक-द्वय एवम् तेरापंथी युवक संघ, लाडनूं के मंत्री महोदय को भी याद करना परमावश्यक है जिनके पत्रों में ऐसे उग्र लेखों के प्रकाशन का सहयोग मिला।

सुजानगढ़
श्रावण शु० [illegible]

विनीत—
बच्छराज सिंघी

युक्त्यायुक्तं वाक्यं बालेनाऽपि प्रभाषितं ग्राह्यम् ।
त्याज्यं युक्ति विहीनं श्रौतं स्यात्स्मार्त्तकं वा स्यात् ॥

भावार्थ—युक्ति (तर्क–प्रमाण) युक्त वाक्य बालक के कहे हुए भी ग्रहण करने (मानने) योग्य हैं, किन्तु युक्ति हीन वाक्य चाहे वेद के हों वा स्मृति के सर्वथा त्याज्य हैं।

—*सत्यामृत-प्रवाह*

देने का दावा कर सकते हैं या करते हैं, वे ज्ञान का विकास करने वाली बुद्धि पर अन्धश्रद्धा की चाबी से ताला क्यों लगा देते हैं? यह तो मनुष्य की बुद्धि पर शास्त्रों द्वारा शोषण होना कहा जायगा। हम समाज को इस तरह के शोषण का शिकार होने से बचने के लिये आगाह करना अपना कर्तव्य समझते हैं। जिन धर्म-गुरुओ के द्वारा शास्त्रीय शोषण का यह व्यापार निरन्तर चलता है, वे मनुष्य की बौद्धिक जागृति के शत्रु हैं, और उस शत्रुता का वे इसलिये निर्वाह करते हैं क्योंकि उनके पेट का निर्वाह भी इसी से होता है। पर नवयुवकों को इस विषय में अपना कर्तव्य कभी नहीं भूलना चाहिये।

इस विषय में श्री बच्छराजजी एक लेख-माला लिख रहे हैं—जिसका यह पहला लेख है। इसमें जैन शास्त्रों की भौगोलिक बातों पर विचार किया गया है। यह विषय गणना से सम्बन्ध रखता है, इसलिये बहुत सरस नहीं मालूम पड़ता, लेकिन लेख-माला के उद्देश्य को समझने में काफी मददगार होगा। —संपादक]

पृथ्वी का आकार और गति

जैन शास्त्रों मे वर्णित कतिपय विषयो पर जब हम निष्पक्ष दृष्टि से विचार करते हैं तो उनमे भी बहुत सी बातें अन्य मजहबों की ही तरह कपोल-कल्पित दृष्टिगोचर होने लगती हैं। या तो उनमे कोई रहस्य छिपा हो सकता है जिसको हम समझ नहीं पाते हों या ऐसी बातों के रचने वाले खुद ही अन्धेरे मे थे

की कोई बात सत्य की कसौटी पर ठीक नहीं उतर रही है, तो सच्चे दिल से उसकी सत्यता को ढूढ निकालने का प्रयत्न करते, जो रहस्य छिपा हुआ है, उसका उद्घाटन करते। मगर विना परिश्रम ही काम चले तो ऐसा करे कौन ? स्मरण रहे कि वे दिन दूर नहीं है कि इस प्रकार की जडता का फलोपभोग करना पड़ेगा। इस लेख माला मे जैन कहलाये जाने वाले विद्वानो के लिये ही मैने कुछ विषय और प्रश्न विचारने के लिये उपस्थित करने का विचार किया है जिनका मै समुचित समाधान नहीं कर सका हू और साथ ही उनसे यह आशा करता हू कि वे इनका समाधान करने का प्रयत्न करेंगे।

पहिले हम भौगोलिक विषयो को ही लेते है जिनके लिये हमारे पास प्रत्यक्ष प्रमाण मौजूद हैं। जैन शास्त्रो मे शास्वत वस्तुओ को मापने के लिये प्रमाणागुल के हिसाब से एक योजन को वर्तमान माप से २००० कोस का बतलाया गया है। कइयो ने ४००० कोस का भी माना है, मगर हम २००० कोस का ही एक योजन मान लेते हैं। एक कोस की दो माइल होती है। हम जिस पृथ्वी-पिण्ड पर बसे हुए है वह एक गेन्द की तरह गोल पिण्ड है जिसका व्यास करीव ७९२७ माइल और परिधि करीव २४८५६ माइल की है। इसका वर्ग मील करें तो करीव १९७०००००० (उन्नीस करोड सत्तर लाख) माइल होती है जिसमे ५२०००००० माइल स्थल भाग और १४५०००००० माइल जल भाग है। जैन शास्त्रो मे पृथ्वी को गोल न मान कर चपटी

(समतल) मानी गई है। जम्बूद्वीप (जिसका विस्तृत वर्णन जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति में है) की लम्बाई एक लक्ष योजन और चौड़ाई एक लक्ष योजन बतलाई है यानी वह ४० कोटि माइल की लम्बाई और ४० कोटि माइल की चौड़ाई का एक समतल भूभाग है जिसके वर्ग मील करें तो १६०००००००००००००००० (एक शंख साठ पद्म) माइल होती है। जम्बूद्वीप के इस समतल भू-भाग को चारों तरफ से थाली की तरह गोल माना गया है जिसकी परिधि के लिये लिखा गया है कि वह ३१६२२७ योजन ३ गाऊ १२८ धनुष्य १३॥ अङ्गुल ५ यव १ [illegible] ८ बालाग्र ५ [illegible] प्रमाणु है। गणना की सूक्ष्मता गौर करने लायक है। यह भी लिखा है कि इस जम्बूद्वीप के यदि एक एक योजन के गोल खण्ड किये जाय तो १० अरब [illegible] होंगे और यदि एक एक योजन के सम चोरस खण्ड किये जाय तो [illegible] होकर ३५१५ धनुष्य ६० अङ्गुल क्षेत्र बाकी रह जाता है।

पहुच जाते है जहाँ से हम रवाना हुए थे तो इससे इस बात के साबित (सिद्ध) होने मे कोई भी संशय नहीं रह जाता है कि हमने एक गोल पिण्ड पर चक्कर लगाया है। आप कलकत्ते से पश्चिम की तरफ चलते जाइये बम्बई, यूरोप, अमेरिका, जापान होते हुए फिर वापिस कलकत्ता एक ही दिशा मे चलते हुए पहुच जाते है। जैन शास्त्रो के बताये हुए पृथ्वी के चपटे (समतल) आकार पर आप एक स्थान से एक ही दिशा मे चलते जाइये, नतीजा यह होगा कि आप दूसरे सिरे पर जाकर अटक जायगे जिस स्थान से आप रवाना हुए थे, वह पिछले सिरे पर रह जायगा। यही एक पृथ्वी के गेद की तरह गोल होने का जबरदस्त और प्रत्यक्ष प्रमाण है जिसका किसी प्रकार से भी खण्डन नहीं किया जा सकता।

आइये, अब जरा गतिके विषय मे विवेचन करे। इससे हमे कोई बहस नहीं कि सूर्य गति करता है या पृथ्वी। इस वक्त हमे केवल गति की रफ्तार पर ही विचार करना है। जैन शास्त्रो मे बताया है कि सूर्य मकर संक्रान्त मे ५३०५$\frac{१५}{६०}$ योजन की गति एक मुहूर्त्त मे करता है यानि करीब २१२२००६६ (दो करोड बारह लाख बीस हजार छियासठ) माइल की। एक मुहूर्त्त ४८ मिनट का माना गया है। इस हिसाब से एक मिनट मे सूर्य की गति ४४२०८४$\frac{३}{४}$ माइल करीब की होती है जब कि वर्तमान हिसाब से रफ्तार एक मिनट मे करीब १७$\frac{१}{२}$ माइल की प्रमाणित होती है। हम कलकत्ते से अपनी जेब घडी (Pocket Watch)

सूर्योदय से मिलाकर रवाना होगे और उसी घड़ी को पश्चिम की तरफ करीब १०४० माइल चल कर सूर्योदय पर देखेंगे तो पूरा ६० मिनट का अन्तर मिलेगा। यानि जो सूर्योदय कलकत्ते मे उस घड़ी मे ६ बजे हुआ था वह इतनी दूर (१०४० माइल) पश्चिम आ जाने पर उसी घड़ी मे ७ बजे होगा। इस प्रकार यह प्रत्यक्ष साबित हो जाता है कि एक मिनट मे करीब १७ माइल की रफ्तार हुई। अब आप विचार सकते है कि एक मिनट मे १७ माइल की गति और ४४२०४८ माइल की गति मे कितना बड़ा अन्तर है।

हमारे जैन शास्त्रों की चपटी मानी हुई पृथ्वी पर तो हर स्थान मे १२ घन्टे का दिन और १२ घन्टे की रात्रि होनी चाहिये, मगर हम देख रहे हैं कि इस पृथ्वी पर ही कही तो ३ महिने तक का दिन और कहीं ३ महिने तक की रात्रि हो रही है। दक्षिण और उत्तर ध्रुवों पर तो एक तरफ सूर्य ६ महिनों तक लगातार दिखाई देता है और दूसरी तरफ ६ महिनों तक सूर्य गायब रहता है।

हो सकता है, जैन शास्त्रों मे जिस वक्त इस विषय पर लिखा गया होगा, उस समय अन्तर्जगत के भौगोलिक अनुभव इतने विकसित नहीं हो पाये थे। यह मालूम नहीं हो पाया था कि इसी पृथ्वी पिन्ड के भी किसी भाग पर इस प्रकार महिनों की रात्रि और महीनों का दिन हो रहा है। फिर यह तो कल्पना भी कैसे की जाती कि पृथ्वी धुरी की तरफ ६६½ डिग्री झुकी हुई है। आज तो ऐसे ऐसे साधन उत्पन्न हो गये हैं जिनके जरिये सूर्योदय के समय कलकत्ते मे बैठा हुआ व्यक्ति न्यु ओरलिन (New Orleans) मे बैठे हुए व्यक्ति को बेतार-टेलीफोन द्वारा वहाँ के सूर्य की बाबत पूछ कर यह उत्तर पाता है कि बस सूर्य वहाँ अस्त हो ही रहा है। इसीलिये तो कहा जा रहा है कि विशाल ब्रिटिश साम्राज्य मे सूर्य कभी अस्त नहीं होता। यदि इस विषय का इतना ज्ञान और ऐसे साधन उस वक्त हो पाते तो आज इस प्रकार की गलतिया देखने को क्यो मिलतीं ? यह तो भौगोलिक मोटी २ बातें हैं जिनको छोटी कक्षा के विद्यार्थी भी

जानते हैं। ऋतुओं का बदलना, हवा का बदलना, वर्षा का होना और बदलते रहना आदि अनेक बातें है जिनको वर्तमान विज्ञान के बतलाये अनुसार यथार्थ उतरते देख रहे हैं।

किसी श्रद्धालु श्रावक को जब ऐसी प्रत्यक्ष बातों पर झुकते और रुजू होते देखते है तो उपदेशक लोग यह युक्ति पेश करते है कि जिन शास्त्रों मे इन विषयों का विस्तृत वर्णन था, वे (विच्छेद) लुप्त हो गये, चौदह पूर्व का जो ज्ञान था, वह (विच्छेद) लुप्त हो गया, आदि। मगर इनसे यह नहीं कहते बनता कि इन विषयों पर काफी लिखा भरा पड़ा है। सूर्यपन्नति, चन्द्रपन्नति, भगवती, जीवाभिगम, पन्नवना आदि अनेक सूत्रो मे इन विषयों पर काफी लिखा मिलता है। फिर भी यह छोटी सी बातें जो आज प्रत्यक्ष साबित हो रही है, इनमें नहीं पाई जातीं। नहीं क्यों पाई जातीं ? अगर नहीं पाई जाती तो यह ऊपर लिखी बातें कहा से निकल पड़ीं।

जिन शास्त्रों का अक्षर अक्षर सत्य होने की दुहाई दी जा रही है, एक अक्षर को भी कम-ज्यादा समझने पर अनन्त संसार-परिभ्रमण का भय दिखाया जा रहा है, उनमें किसी बात अगर प्रत्यक्ष के सामने यथार्थ न उतरे तो विवेकशील मनुष्य का यह कर्तव्य हो जाता है कि इन शास्त्रों में सत्य क्या क्या है, इसकी परीक्षा करे। विज्ञान, युक्ति, न्याय और तर्क की कसौटी पर कस कर यथार्थ में जो सत्य उतरे, उसी पर अमल करे।

इस लेख का विषय विशेषतः गणना विषयक [illegible]

calculation) है, इसलिये सत्य-अन्वेषक को इसकी सत्यता ढूँढ निकालने में विशेष कठिनाई नहीं होगी।

आशा है, जैन विद्वान् 'तरुण जैन' द्वारा या मुझ से सीधे (Direct) पत्र-व्यवहार करके मेरे इन प्रश्नों का समाधान करने का प्रयास करेंगे।

बहुत सी बातें ऐसी लिखी हुई हैं जो भौगोलिक अन्वेषणों से प्राप्त हुए ज्ञान की सत्यता के मुकाबले मे गलत साबित हो रही है, मनुष्य के अन्धविश्वासों की खिल्ली उडा रही हैं। उस लेख मे मैने पृथ्वी की लम्बाई-चौडाई के बाबत केवल जम्बूद्वीप की लम्बाई-चौडाई बतला कर वर्तमान की बताई हुई पृथ्वी के माप से मुकाबला करके दिखाया था। मगर जैन सूत्रो मे बताया गया है कि ऐसे ऐसे असंख्य द्वीप और असंख्य समुद्र इस पृथ्वी पर स्थित हैं और साथ ही यह भी कहा गया है कि प्रत्येक द्वीप से उस के चारों तरफ का समुद्र माप मे दुगुणा और प्रत्येक समुद्र के बाहर चारों तरफ का द्वीप भी माप मे दुगुणा है। इस दुगुणा करते जाने के क्रम को 'पन्नवणा सूत्र' के पन्द्रहवे इन्द्रियपद मे एक चार्ट देकर चालीस संख्या तक तो द्वीपो तथा समुद्रो के नाम देकर बताया है और इसके आगे असंख्य द्वीप और असंख्य समुद्रों को इसी दुगुणे क्रम से गणना करते जाने का कह कर पृथ्वी को अत्यन्त बडी दिखाने की कल्पना की है, जो विचारशील पाठको को नीचे दिये हुए उस 'पन्नवणा' सूत्र की तालिका से विदित हो जायगा। शास्वत वस्तुओं के माप मे एक योजन चार हजार मील का माना गया है :—

द्वीप एवं समुद्रों के नाम	योजन संख्या
१ जम्बू द्वीप	१०००००
२ लवण समुद्र	२०००००
३ धातकी खण्ड द्वीप	४०००००

४ कालोदधि समुद्र	
५ पुष्कर द्वीप	८०००००
६ पुष्कर समुद्र	१६०००००
७ वारुणी द्वीप	३२०००००
८ वारुणी समुद्र	६४०००००
९ क्षीर द्वीप	१२८०००००
१० क्षीर समुद्र	२५६०००००
११ घृत द्वीप	५१२०००००
१२ घृत समुद्र	१०२४०००००
१३ इक्षु द्वीप	२०४८०००००
१४ इक्षु समुद्र	४०९६०००००
१५ नन्दीश्वर द्वीप	८१९२०००००
१६ नन्दीश्वर समुद्र	१६३८४०००००
१७ अरुण द्वीप	३२७६८०००००
१८ अरुण समुद्र	६५५३६०००००
१९ ऋण द्वीप	१३१०७२०००००
२० ऋण समुद्र	२६२१४४०००००
२१ वायु द्वीप	५२४२८८०००००
२२ वायु समुद्र	१०४८५७६०००००
२३ कुण्डल द्वीप	२०९७१५२०००००
२४ कुण्डल समुद्र	४१९४३०४०००००
२५ सख द्वीप	८३८८६०८०००००
	१६७७७२१६०००००

२६	संख समुद्र	३३५५४४३२०००००
२७	रुचक द्वीप	६७१०८८६४०००००
२८	रुचक समुद्र	१३४२१७७२८०००००
२९	भुजङ्ग द्वीप	२६८४३५४५६०००००
३०	भुजङ्ग समुद्र	५३६८७०९१२०००००
३१	कुस द्वीप	१०७३७४१८२४०००००
३२	कुस समुद्र	२१४७४८३६४८०००००
३३	कुच द्वीप	४२९४९६७२९६०००००
३४	कुच समुद्र	८५८९९३४५९२०००००
३५	हार द्वीप	१७१७९८६९१८४०००००
३६	हार समुद्र	३४३५९७३८३६८०००००
३७	हारवर द्वीप	६८७१९४७६७३६०००००
३८	हारवर समुद्र	१३७४३८९५३४७२०००००
३९	हारवर भास द्वीप	२७४८७७९०६९४४०००००
४०	हारवर भास समुद्र	५४६७५५८१३८८८०००००

इस तालिका मे बताया हुआ उन्चालीसवा हारवरभास द्वीप १०९९५११६२७७७६०००००००० मील के क्षेत्र का लम्बा-चौडा गोलाकार है और चालीसवां हारवरभास समुद्र २१९९०२३२५-५५५२००००००००० मील क्षेत्र लम्बा-चौडा गोलाकार है। पृथ्वीके असंख्य द्वीप—समुद्रो के आखिर का समुद्र स्वय-भू-रमण नामी समुद्र है। यह वही स्वयं-भू-रमण समुद्र है जिसके बडेपन की उपमा जैनी लोग बड़े गर्व से दिया करते है। जम्बूद्वीप के

मध्यभाग में मेरु पर्वत के बीचोंबीच से लेकर इस ऊपर बनाये हुए द्वारवरभास समुद्र तक के सर्व क्षेत्र तक के भी वर्गमील निकालने का यदि पाठक कष्ट उठावें तो उन्हें अनुभव होगा कि हमारे अनन्त ज्ञानियों ने इन द्वीप-समुद्रों के चालीस की संख्या तक तो भिन्न भिन्न नाम बता दिये और बाकी के द्वीप-समुद्रों को 'असंख्य' की उपाधि से विभूषित करके इतने बड़े क्षेत्र को जो इस २४८५६ मील के घेर की पृथ्वी के गोल पिण्ड में छिपा पड़ा है—हमें बतला कर कितने बड़े ज्ञान का लाभ पहुचाने की हमारे पर कृपा की है। जम्बूद्वीप से प्रारम्भ करके पुष्कर द्वीप तक अढाई द्वीप कहलाता है। इस अढाई द्वीप तक तो १३२ सूर्य और १३२ चन्द्र परिभ्रमण करते हैं और दिन रात होता है, समय का माप माना गया है और आबादी भी मानी गई है, परन्तु इसके बाद के असख्य-द्वीप समुद्रों में न आबादी है और न समय का माप है यानी सूर्य-चन्द्र वहा परिभ्रमण नहीं करते, स्थिर है। वहा प्रकाश सर्वदा एक-सा है। अढाई द्वीप के अलावा और द्वीप जब आबाद नहीं वहा समय का माप नहीं, सब असख्य द्वीप-समुद्रों की स्थिति एक सी है, तो चालीस तक की ही संख्या के नाम बताने का कष्ट क्यों उठाया गया इसकी कल्पना समझ में नहीं आती। इस प्रकार योजनों के माप में दुगुणे क्रम से बढते जाने वाले द्वीप और समुद्रों को बढ़ते बढ़ते असख्य की गणना से बड़ी होने की पृथ्वी की कल्पना करने का केवल मात्र यही कारण मालूम पड़ता है कि पृथ्वी की परवाह

स्थिति मालूम होने के साधन उस जमाने मे मौजूद नहीं थे (जिस जमाने में ये सूत्र रचे गये) और न इतनी लम्बी यात्रा के यात्री सारी पृथ्वी-भ्रमण कर आ सकने के साधन मौजूद थे। न तार और बेतार था और न रेडियो (Radio) वगैरा था कि पूछ-ताछ से पता लगाया जा सकता। ऐसी सूरत मे बूज-बुजागरजी की तरह सवाल का जवाब देना आवश्यक समझ कर ऐसी ऐसी बे-बुनियादी कल्पनाएँ की गई हो तो आश्चर्य क्या है ?

सूर्य-प्रज्ञप्ति के आठवें प्राभृत मे लिखा है कि भरत क्षेत्र का सूर्य अस्त होकर महाविदेह क्षेत्र मे उदय होता है। जम्बूद्वीप में दो सूर्य और दो चन्द्र भ्रमण करते हुये माने गये है। जो सूर्य भरत क्षेत्र मे आज अस्त होकर महाविदेह जाकर उदय हुआ है, वह सूर्य वापिस तीसरे दिन भरत क्षेत्र मे आकर उदय होगा। दोनो सूर्यो के उदय होने का क्रम एक दिन अन्तर से बताया गया है। किन्तु हम इस पृथ्वी के बासिन्दे केवल एक ही सूर्य को देख रहे है। आप करीब १०४० मील प्रति घन्टे रफ्तार से चलने वाले हवाई जहाज को मध्यान्ह के वक्त सूर्य के साथ रवाना कर दीजिये। जहा से वह रवाना हुआ था, उसी जगह और उसी वक्त दूसरे दिन उसी सूर्य महाराज को मस्तक पर लिये हुये सही सलामत पहुच जायगा, दूसरे सूर्य महाराज का कहीं दर्शन तक न होगा। अगर हम अमेरिका को महाविदेह क्षेत्र मान लें तो सूर्य का भरत क्षेत्र मे अस्त होकर

महाविदेह में उदय होने तक के कथन की बहुत थोड़े अंशों में संगति मिलाने की चेष्टा कर सकते हैं। मगर इन सूत्रों की मानी हुई महाविदेह भी तो बड़ी विचित्र है जिसको थोड़ा सा बतला देना यहां उचित होगा। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में महाविदेह क्षेत्राधिकार में लिखा है कि महाविदेह क्षेत्र ३३६८४-४ योजन यानी करीब १३४७३६८००० मील चौड़ा और ३३७६७ योजन यानी करीब १३५०६८०००० मील लम्बा है। इसके चार विभाग हैं—

पोती करने का प्रयास छोड़ दे। पिछले महीने के लेख मे और इस मे मैंने केवल वे ही भौगोलिक बाते पाठको के समक्ष विचारार्थ रखने का प्रयास किया है जिनको ले कर जैन शास्त्रों की इस सम्बन्ध की बताई हुई बातो को हम गणना और युक्ति से गलत साबित होती हुई देख रहे है। अब मैं अगले लेखो मे वे भौगोलिक बातें, जिन मे जैन सूत्रो मे पर्वत, समुद्र, द्रह, वन, नदी, नगर आदि का बढ़ा बढा कर कल्पनातीत वर्णन किया है, बताने का प्रयास करूंगा। भौगोलिक विषयो के अलावा अन्य अनेक विषयों मे भी ऐसे-ऐसे प्रसंग है जिन्हे हम असत्य या असम्भव और अस्वाभाविक की श्रेणी मे रख सकते है। अगले लेखों मे इन सब का भी दिग्दर्शन कराया जायगा।

—:o:—

द्वीप से दुगुणा वडा माना है। एक बात यह भी जान लेने की आवश्यकता है कि सनातन धर्म क ग्रन्थों मे एक योजन को चार कोस का माना गया है मगर जैन शास्त्रों मे शास्वत वस्तुओं के लिये एक योजन २००० कोस का यानी चार हजार माइल का माना गया है और अशास्वत वस्तुओ के लिये चार कोस का माना गया है। पृथ्वी के द्वीप, समुद्र आदि शास्वत ही माने गये हैं। श्रीमद्भागवत के पञ्चम स्कन्ध के द्वीप और समुद्रों के नाम और माप आप को नीचे दी हुई तालिका से आसानी से मालूम हो जायँगे।

द्वीप और समुद्रों के नाम	योजन
१ जम्बू द्वीप	१०००००
२ क्षार समुद्र	१०००००
३ प्लक्ष द्वीप	२०००००
४ इक्षुरस समुद्र	२०००००
५ साल्मलि द्वीप	४०००००
६ सुरा समुद्र	४०००००
७ कुश द्वीप	८०००००
८ घृत समुद्र	८०००००
९ क्रोंच द्वीप	१६०००००
१० क्षीर समुद्र	१६०००००
११ शाक द्वीप	३२०००००
१२ दधि समुद्र	३२०००००
१३ पुष्कर द्वीप	६४०००००
१४ सुधा समुद्र	६४०००००
	कुल २५४०००००

त्रुटि नहीं रहती कि हमारी पृथ्वी पर प्रकाश करने वाला सूर्य एक ही है। पाठक वृन्द, एक सूर्य को देखते हुए भी दो सूर्यों का मानना शास्त्रों की अक्षर अक्षर सत्यता को किस हद तक प्रमाणित करता है, इसे विचार कर देख लें। श्री भास्करा-चार्य रचित एक प्राचीन ज्योतिष ग्रंथ "सूर्य सिद्धांत" के बारहवें अध्याय मे हमारी इस पृथ्वी को स्पष्टतया गेन्द की तरह गोल और भ्रमण करती हुई मानी है, जैसा कि वर्तमान विज्ञान ने मान रखा है। भारतवर्ष के ज्योतिषी इसी सूर्य सिद्धान्त के आधार पर यहां के पञ्चाङ्ग बनाते है। सूर्य सिद्धान्त मे भी इस पृथ्वी पर प्रकाश पहुचाने वाला सूर्य एक ही माना है। ऐसी सूरत मे दो सूर्य मानने वालो के लिये प्रत्यक्ष और (व्यावहारिक) आगम दोनों प्रमाणों के मुकाबले मे अपनी दो सूर्य की मान्यता को साबित करने की पूरी जिम्मेवारी आ पडती है।

गताक मे मैंने यह वादा किया था कि अगले लेख मे जैन शास्त्रों की वे भौगोलिक बातें, जिनमे पर्वत, समुद्र, नदी, नगर आदि का बढा बढ़ा कर कल्पनातीत वर्णन किया है, बताने का प्रयास करूंगा। उसी वादे के अनुसार सर्व प्रथम पर्वतों को ही लीजिये। मेरु पर्वत ९९००० योजन यानी ३९६०००००० (उनचालीस कोटि, साठ लाख) माइल जमीन से ऊँचा है और १००० योजन यानी ४०००००० माइल जमीन के अन्दर है और इसकी चौड़ाई १०००० योजन यानी ४०००००००० माइल

की लम्बाई जब हम अढाई द्वीप के नक़शे पर दृष्टि डाल कर देखते है तो मालूम होता है कि पद्म द्रह से मानुष्योतर पर्वत तक इसने करीब २५ अरब माइल लम्बा भू-भाग घेर लिया है। यह है आपकी छोटी सी गंगा नदी जिसकी चौडाई १२५००० कोस और लम्बाई २५ अरब माइल की है।

अब लीजिये नगरों का कुछ वर्णन। जीवाभिगम सूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति मे विजया राजधानी का वर्णन आता है। वहां इस विजया राजधानी को १२००० योजन यानी २४०००००० (दो कोटि चालीस लाख) कोस लम्बी और इतनी ही चौडी तथा ३७६४८ योजन से कुछ अधिक इसकी परिधि बतलाई है। क्या इतने लम्बे चौड़े नगर भी आबाद हो सकते हैं ?

और क्या केवल नगर के बडेपन ही की कल्पना करनी है, उसमे होने वाले सारे कार्य-कलापो को दृष्टि से ओझल कर देना है ? खैर, २४०००००० कोस लम्बी चौडी राजधानी तो अपने को देखना नसीब कहा मगर जम्बूद्वीप पन्नत्ति मे हमारे भारत की अयोध्या का जो वर्णन आता है उसकी सैर तो कर लें। इस अयोध्या का नाम वहा पर वनिता भी दिया है। यह वनिता १२ योजन लम्बी और ९ योजन चौडी बताई गई है। इन योजनो को शास्वत माप के २००० कोस के हिसाब से गुणा करें तब तो हमारी अयोध्या २४००० कोस लम्बी और १८००० कोस चौड़ी हो जाती है जिसमे

वर्तमान भूगोल जैसे दो पिन्ड समा सकते हैं मगर अशास्वत माप के हिसाब से देखें तो भी ९६ माइल लम्बी और ७२ माइल चौड़ी यानी ६९१२ वर्गमाइल की बड़ी नगरी हो जाती है। कल्पना की भी कोई हद होती है। पर्वत समुद्र, नदियां, नगर आदि के इन लम्बे चौड़े मापों के आंकड़ों को बताते हुए इस बीसवीं सदी में जी नहीं चाहता मगर क्या करें शास्त्रों के अमृत वचनों की सत्यता की तलाश में उलझ भटक कर भी यदि सत्यता निकाली जा सके तो मानव-जाति का बड़ा भारी उपकार होगा।

'तरुण जैन' अगस्त सन् १६४१ ई०

खगोल वर्णन

गतांक मे मैंने वादा किया था कि अगले लेख मे खगोल के विषय मे लिखुंगा। उसी वादे के अनुसार इस लेख मे जैन शास्त्रो के खगोल विषय का कुछ वर्णन करूंगा। मैंने यह पहिले ही कहा है कि मेरे खयाल से जैन शास्त्रो मे भी असत्य, असम्भव और अस्वाभाविक कल्पनाएँ वहुत है। मेरा उद्देश्य यही है कि उनमे से कुछ नमूने के तौर पर इन लेखों द्वारा जैन जगत् के सामने रखकर समाधान कराने का प्रयत्न करूँ। मेरे तीन लेख 'तरुण जैन' के गत तीन अङ्को मे निकल चुके हैं मगर जैन कहलाने वाले उन विद्वान सज्जनों ने जिनको शास्त्रों की अक्षर अक्षर सत्यता पर मोह है, अभी तक उन लेखों से असत्य सावित होने वाले प्रसंगों के समाधान करने का प्रयास नहीं किया। मैं आशा करता हू कि अब भी वे सत्य को साबित करने मे और समझाने मे प्रयत्नशील होंगे।

खगोल मे सूर्य, चन्द्र, ग्रह, उपग्रह, नक्षत्र, तारे आदि की आकाश-मण्डल मे गति, स्थिति, संस्थापन, दूरी व पारस्परिक आकर्षण आदि का वर्णन होता है।

जैन शास्त्रों मे इस अनन्त आकाश के दो भाग कर दिये गये

है। लोक आकाश और अलोक आकाश। इस लोक आकाश मे असंख्य सूर्य और असंख्य चन्द्र है जिनमे अढाई द्वीप तक जहा तक कि मनुष्यों की आबादी का सम्बन्ध है, १३२ सूर्य और १३२ चन्द्र बताये है। सर्व प्रथम हम सूर्य का ही वर्णन करेंगे। जैन शास्त्रों मे जम्बू द्वीप मे हमारे देश पर दो सूर्य प्रकाश का काम करने हुए बताये गये है जिनके बाबत मैं गत लेखो मे लिखा ही जा चुका हूँ।

रूप में लिखी गई है, सुन्दर और सच है, बाकी की सब बातें ऐसे ही लिख दी गई है। मगर मैं कहूंगा कि ऐसा ख्याल करने वालों को सोचना जरूरी है कि मनोविकारों को दूर करने का विधान देने वालों के लिये क्या इस प्रकार झूठ सच मसाला मिलाना पूरी करना अभ्य है ? जिन विषयों का उनको ज्ञान नहीं था, उन पर चुप ही रहते। मगर चुप रहें कैसे ? चुप रहने से सर्वज्ञता में जो बट्टा लगता !

की गरमी को माप लेगा और $\frac{१}{१००००००}$ centigrade का ताप-क्रम बतला देगा। रश्मि-विश्लेपण यन्त्र नमक के एक ग्रेन टुकड़े के १८ क्रोड भाग मे से एक भाग को अग्नि शिखा पर पडने से यह बता देगा कि इसमे क्या पड़ा है। इस प्रकार अनेक यन्त्र है जिनके द्वारा इन खगोल-पिन्डो की स्थिति, गति, वृत्त, दूरी, आकार, माप, वजन, तापक्रम, प्रकाश, विद्युत-प्रवाह, आकर्पण, घनत्व, द्रव्यमान, गुरुत्वाकर्पण आदि अनेक बातो का सही सही पता लग जाता है।

इस विज्ञान-युग मे जब कि सकड़ो बड़ी बडी प्रयोगशालाओ मे रात-दिन इन खगोल वर्तिय पिन्डो को बड़े बड़े दूर-दर्शक यन्त्रो द्वारा प्रत्यक्ष देखा जा कर इनका ब्योरेवार वर्णन हमारे सामने आ रहा है और बताये हुये वर्णन का प्रत्येक अक्षर सत्य साबित हो रहा है तो यह कैसे माना जा सकता है कि ऊपर बताया हुआ सूर्य के बाबत का शास्त्रीय वर्णन सत्य है।

वर्तमान विज्ञान द्वारा बताये हुए इन खगोल-पिन्डो सम्बन्धी वर्णन को जो हजारो पृष्ठो मे भी नही लिखा जा सकता, इस छोटे से लेख मे आप लोगो के समक्ष कैसे रखा जा सकता है। केवल यही अनुरोध किया जा सकता है कि यदि इस विपय की सत्यता जाचनी हो तो इस सम्बन्ध के साहित्य का अध्ययन करे।

इस लेख मे मैने सूर्य के सम्बन्ध का ही कुछ वर्णन किया है। अब अगले लेखो मे बाकी के सब ग्रहो, उपग्रहो आदि

पर लिखा गया है। श्री चोपड़ाजी लिखते हैं कि 'कुछ दिनों से देखने में आता है कि एक श्रेणी के लोग आधुनिक विज्ञान की जानी हुई बातों से जैन सिद्धान्तों की बातों का असामंजस्य दिखला कर जैन सिद्धान्तों से लोगों की आस्था हटाने का प्रयास कर रहे हैं और जनता को भ्रम में डालते हैं। यह लोग यहाँ तक कह डालते हैं कि या तो सिद्धान्तों की बातें सर्वज्ञों की नहीं हैं अथवा सर्वज्ञ थे ही नहीं।' यदि विवरण-पत्रिका का उक्त लेख मेरे ही लेखों को लक्ष्य करके लिखा गया हो तब तो मैं कहूंगा कि श्री चोपड़ाजी का कर्त्तव्य तो यह था कि जैन शास्त्रों की उन बातों का जो प्रत्यक्ष के सामने असत्य साबित हो रही हैं, किसी तरह सामंजस्य करके दिखलाते या उचित समाधान करते। मगर प्रश्नों की बातों का तो उन्होंने कहीं जिक्र तक नहीं किया, उल्टे प्रश्न करने वाले के प्रति लोगों में मिथ्या भ्रम फैलाने की ही चेष्टा की है। उनका यह कथन कि "यह लोग यहाँ तक कह डालते हैं कि या तो सिद्धान्तों की बातें सर्वज्ञों की नहीं है अथवा सर्वज्ञ कोई थे ही नहीं" लोगों में भ्रम फैला कर उत्तेजित करने के सिवाय और कुछ अर्थ ही नहीं रखता। 'विवरण-पत्रिका' के उस लेख में आगे चलकर श्री चोपड़ाजी ने एक पाश्चात्य विद्वान Sir James Jeans के कुछ वाक्य उद्धृत कर विज्ञान की बातों को अनिश्चित बता कर विज्ञान पर से भी लोगों की आस्था हटाने का प्रयास किया है। श्री चोपड़ाजी को मालूम होना चाहिये

कि जैन शास्त्रों में—समभूमि बतला कर जिस सूर्य्य को उदय होते १८६०५३३७७ माईल से दिखाई देने वाला बतलाया है उसका सौ दो सौ माइल पर भी उदय होते क्षण दिखाई नहीं देना—इस पृथ्वी पर दो के बजाय एक ही सूर्य्य का होना और लगातार महीनों तक दिखाई देना—पृथ्वी पर १८ मूहूर्त (१४ घन्टे २४ मिनिट) से बड़े दिन और रातों को होना—छः महीने के अन्तर-काल से पहिले ही सूर्य्य ग्रहण का होना आदि अनेकों बातें जैन शास्त्रों के विरुद्ध मगर प्रत्यक्ष मे सत्य साबित होने वाली बातों के लिये विचार विज्ञान को कोसना अपने खुद को हास्यास्पद बनाना है। इन बातों के लिये विज्ञान को आड मे लेने की आवश्यकता ही क्या है, यह तो प्रत्यक्ष के व्यवहारों मे आने वाली बातें हैं जो सर्वज्ञता पर प्रकाश डाल रही हैं। खैर, श्री चोपडाजी से अब भी अनुरोध है कि वे कृपा करके मेरे लेखों के प्रश्नों का समाधान करके कृतार्थ करें।

गतांक मे मैंने खगोल के विषय मे सूर्य्य पर कुछ लिखा था। अब इस लेख में चन्द्रमा के विषय मे हमारे जैन शास्त्र क्या कह रहे हैं और वर्तमान विज्ञान क्या कह रहा है, संक्षेप मे इसी पर कुछ लिखूगा। जैन शास्त्रो मे जम्बूद्वीप के लिये सूर्य्य की तरह चन्द्रमा भी दो बतलाये है और उन्हे सूर्य्य की ही तरह भ्रमण करते हुए बताया है। प्रत्येक चन्द्र हमारी पृथ्वी से ८८० योजन यानी ३५२०००० माइल ऊपर है यानी

सूर्य्य से ३२०००० माइल ऊपर की तरफ। और इनका गोलाकार विमान है जिसकी लम्बाई ५६/६१ योजन यानी ३६७२ ८/६१ माइल और इतनी ही चौडाई तथा मोटाई २८/६१ यानी १८३६ ४/६१ माइल की है। इस विमान का नाम चन्द्रावतंसक विमान है और इसको १६००० देवता उठाये आकाश मे भ्रमण कर रहे है। इन १६००० देवों का रूप इस प्रकार बताया है कि ४००० देव पूर्व दिशा मे सिंह का रूप किये हुए, ४००० देव दक्षिण दिशा मे हाथी का रूप किये हुए, ४००० देव पश्चिम दिशा मे वृषभ का रूप किये हुए, और ४००० देव उत्तर दिशा मे अश्व का रूप किये हुए है। जीवाभिगम सूत्र मे इन हाथी घोडे, सिंह और बैल वाले रूपों का विस्तार पूर्वक जो रोचक वर्णन आया है, वह देखते ही बनता है। चन्द्रदेव के चार अग्रमहिषिया (पटरानिया) है और प्रत्येक पटरानी के चार चार हजार देवियो का परिवार है। इस प्रकार चन्द्रदेव के भी १६००४ देवियां हुई। चन्द्रदेव की चारो पटरानियों के नाम चन्द्रप्रभा, सुदर्शना (कहीं कहीं ज्योतिषप्रभा), अर्चिमाली और प्रभंकरा है। इन १६००४ देवियों के साथ नाना प्रकार के भोगोपभोग भोगते हुए चन्द्रदेव आकाश मे विचरण कर रहे है। सूर्य्य और चन्द्रदेव के भोगोपभोग के सम्बन्ध मे जीवाभिगम सूत्र मे भगवान् से श्रीगौतम स्वामी ने एक प्रश्न पूछा है जो कुतूहल-वर्द्धक है। श्रीगौतम स्वामी पूछते है कि 'हे भगवान्' सूर्य्यदेव और चन्द्रदेव अपने सूर्य्यावतंसक और

चन्द्रावतंसक विमान की सुधर्मा सभा में क्या अपनी देवियों के साथ मैथुन सम्बन्धी भोग भोगने मे समर्थ हैं, तो उत्तर में भगवान् कहते हैं कि 'हे गौतम, यह देव वहा मैथुन करने मे समर्थ नहीं हैं कारण इन विमानों मे वज्र-रत्न-मय गोल डव्बों में वहुत से जिनेश्वर देवों (जो मुक्ति प्राप्त कर चुके हैं) की अस्थि, दाढें वगैरह रखे हुए रहते है और वे अस्थि, दाढ़ें वगैरह देवों के लिये पूजनीय, अर्चनीय और सेवा करने योग्य हैं। इसलिये वहा पर और और तरह के भोगोपभोग भोग सकते हैं परन्तु मैथुन नहीं कर सकते। चन्द्रदेव के मुकुट मे चन्द्रमण्डल का चिन्ह है और उनका वर्ण तप्त सुवर्ण जैसा दिव्य है। सूर्य्यदेव की तरह चन्द्रदेव के भी ४००० सामन्तिक देव (भृत्य) हैं और १६००० देव आत्मरक्षक (Body guards) सर्वदा सेवा मे तत्पर रहते हैं। चंद्रदेव की वही सात अनिका हैं जैसी सूर्य्यदेव की हैं। चन्द्रदेव की सम्पत्ति का तो कहना ही क्या है, वे ज्योतिषी देवों में सब से अधिक धनाढ्य हें। चन्द्रमा की कला कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष की तिथियों के अनुसार घटती वढती रहती है। इसके लिये जैन शास्त्रों मे एक राहु देव की कल्पना की है। चन्द्र प्रज्ञप्ति सूत्र के वीसवें पाहुड मे भगवान कहते हें कि राहु एक देव है जो महा सम्पत्तिशाली, श्रेष्ठ वस्त्र और सुन्दर आभूषण धारण करने वाले हें। इन राहु देव के नौ नाम इस प्रकार वताये हें—सिंहाटक, जटिल, क्षुल्लक, खर, दद्दुर, मगर, मच्छ, कच्छ और कृष्ण सर्प। राहुदेव

के विमान के पाच वर्ण हैं—कृष्ण, नील, रक्त, पीत, शुक्ल। यह राहु देव दो प्रकार के हैं—एक ध्रुव राहु (जिसको नित्य राहु भी कहते हैं) और एक पर्व राहु। ध्रुव राहु का यह काम है कि प्रत्येक मास की प्रतिपदा से चन्द्र-विमान को एक एक कला करके १५ दिन तक ढकते रहना और अमावस्या को पूर्ण ढकते हुए शुक्लपक्ष के प्रतिपदा से वसे ही एक एक कला १५ दिन तक वापस हटना, जिसकी वजह से चन्द्रमा की कलाएं दिखाई देती हैं। पर्व राहु का काम सूर्य्य चन्द्र के ग्रहण (Eclipse) करने का है। राहु का विमान सूर्य्य-विमान तथा चन्द्र-विमान से चार अङ्गुल नीचा चलता है। ग्रहण के समय पर्व राहु का विमान जब सूर्य्य विमान और चन्द्र विमान के सामने आजाता है तब सूर्य्य-विमान या चन्द्र-विमान राहु के विमान की आड मे आजाते हैं और ढक जाते हैं। जितने अशों मे विमान ढका जाता है, उतने ही अशों का ग्रहण हो जाता है। ग्रहणों के बावत जैन शास्त्रो मे लिखा है कि यदि चन्द्र-ग्रहण के पश्चात् दूसरा चन्द्र-ग्रहण हो तो जघन्य (कम से कम) ६ मास और उत्कृष्ट (ज्यादा से ज्यादा) ४२ मास के अन्तर-काल से होगा और सूर्य्य-ग्रहण के पश्चात् सूर्य्य-ग्रहण हो तो जघन्य ६ मास और उत्कृष्ट ४८ वर्ष के अन्तर-काल से होगा। इस प्रकार चन्द्र और राहु के बावत की तथा ग्रहणो की जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर-काल की कल्पना को देख कर ऐसी कल्पना करने वाले सर्वज्ञों की सर्वज्ञता पर तरस

और आश्चर्य उत्पन्न होता है। ग्रहणों के जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर-काल की कल्पना किस आधार पर की है, यह तो करने वाले ही जानें, परन्तु यह कल्पना सम्पूर्णतया निराधार और असत्य साबित हो रही है। सर्वज्ञों ने कहा है कि सूर्य्य ग्रहण के पश्चात् दूसरा सूर्य्य ग्रहण कम से कम ६ मास पहिले नहीं होता, मगर इस कथन के विरुद्ध दो वाकये तो मैं पेश करता हूं, जो इस प्रकार हैं। विक्रमाब्द १९५६ की कार्तिक वदी अमावश्या को पहिला सूर्य्य ग्रहण होकर पाच ही महीने बाद चैत वदी अमावश्या को फिर दूसरा सूर्य्य ग्रहण हुआ जिसको लोगों ने अच्छी तरह अवलोकन किया है और इसवी सन् १९३१ का नाविक पञ्चांग भी The (Nautical Almanac) जो London से प्रकाशित होता है मेरे पास पडा है। उसमे तीन सूर्य्य ग्रहण और दो चन्द्र ग्रहण हुए हैं, जो इस प्रकार हैं—

पहिला सूर्य्य ग्रहण—तारीख १८ अप्रैल १९३१
दूसरा सूर्य्य ग्रहण—तारीख १२ सेप्टेम्बर १९३१
तीसरा सूर्य्य ग्रहण—तारीख ११ अक्टूबर १९३१
पहिला चन्द्र ग्रहण—तारीख २ अप्रैल १९३१
दूसरा चन्द्र ग्रहण—तारीख २६ सेप्टेम्बर १९३१

जैन शास्त्रों के ग्रहणों के कम से कम ६ मास अन्तर-काल बतलाने के खिलाफ बहुत ग्रहण हो चुके और होते रहेंगे। मैंने तो यहां केवल वही दिखाये हैं जिनका मेरे पास प्रमाण मौजूद

है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि The Nautical Almanac की सब प्रतियां (जब से इसका प्रकाशन प्रारम्भ हुआ है) मंगाई जाकर देखी जायँ तो अनेक ग्रहण ऐसे मिलेंगे जो ६ मास से पहले हुए हैं और जैन शास्त्रों के बताये हुए जघन्य अन्तर काल को असत्य साबित कर रहे हैं। अन्वेषणों से यह साबित हुआ है कि एक वर्ष में ५ सूर्य ग्रहण और दो चन्द्र ग्रहण हो सकते हैं और प्रत्येक १८ वर्ष २२८ दिन ६ घन्टे के पश्चात् सूर्य्य ग्रहण और चंद्र ग्रहण फिर पहिले के क्रम से होने लगते हैं। सर्वज्ञों ने कहा है कि सूर्य्य ग्रहण का उत्कृष्ट यानी ज्यादा से ज्यादा अन्तर-काल पडे तो ४८ वर्ष का पड सकता है। वर्तमान विज्ञान के कथनानुसार प्रत्येक १८ वर्ष २२८ दिन ६ घन्टे पश्चात् सूर्य्य और चन्द्र ग्रहण फिर पहिले के क्रम से होने लगते हैं तो इन सर्वज्ञों का सूर्य्य ग्रहण के उत्कृष्ट अन्तर काल का ४८ वर्ष बतलाना सर्वथा असत्य साबित होता है। सर्वज्ञ और अनन्त ज्ञानी कहलाने वालों के वचन यदि इस प्रकार प्रत्यक्ष के सामने असत्य साबित हो रहे हैं तो शास्त्रों की अक्षर अक्षर सत्यता का मोह रखने वाले सज्जनों को चाहिये कि अपने विचारों को अच्छी तरह प्रमाण की कसौटी पर कस कर देखें अथवा सत्यता को साबित करके दिखावें। यह तो हुई ग्रहणों के जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर-काल बतलाने के सम्बन्ध की बात। अब मैं चन्द्र और राहु के बाबत की शास्त्रीय कल्पना के सम्बन्ध में भी कुछ विचार उपस्थित करूं।

कृष्ण और शुक्ल पक्ष के लिये होने वाली चन्द्रमा की कलाओं के बाबत सर्वज्ञों ने ध्रुव राहु की कल्पना करके इस मसले को जैसे हल करने का मिथ्या प्रयास किया है, उस पर विचार करने से तो यह सावित हो रहा है कि व्यावहारिक ज्ञान भी शायद ही काम में लाया गया हो। चन्द्रदेव का विमान ५६/६१ योजन यानी ३६७२ ८/६१ माइल लम्बा चौडा गोलाकार और ध्रुव राहु का विमान दो कोस यानी ४ माइल लम्बा चौडा बतलाया है। इस राहु ग्रह के विमान के माप के बाबत जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के ज्योतिषी चक्राधिकार मे लिखा है "दोकोसेयगहाणं" यानी ग्रह का दो कोस का विमान है और जीवाभिगम सूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति मे लिखा है "ग्रह विमाणेवि अद्ध जोयणं" यानी ग्रह का विमान आधे योजन का है। इस प्रकार दोनों सूत्रों मे भिन्न भिन्न कथन है जो सर्वज्ञता के नाते कतई नहीं होना चाहिये। कहीं कुछ और कहीं कुछ कह देना सर्वज्ञता नहीं बल्कि अल्पज्ञता का द्योतक है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के कथनानुसार राहु के विमान का व्यास यदि हम दो कोस यानी चार माइल का मान लें तो चंद्रमा के ३६७२ ८/६१ माइल के व्यास के विमान के मुकाबिले मे (दोनों का गोलाकार होने की वजह से) अमावश्या की रात को राहु का विचारा छोटा सा विमान चन्द्रमा के बहुत बड़े विमान को ढक तो क्या सकेगा (यानी नहीं ढक सकेगा) परन्तु चन्द्रमा के चमकते हुए प्रकाशवान विमान के बीच मे

केवल एक छोटी सी काली टिकडी के मानिन्द दिखाई पड़ेगा। जीवाभिगम सूत्र के कथनानुसार यदि राहु के विमान को आधे योजन का यानी २००० माइल के व्यास का मान कर चन्द्रमा के ३६७२$\frac{१३}{६१}$ माइल के प्रकाशवान व्यास में २००० माइल के व्यास का राहु का काला चक्कर बीच में लगा कर देखें तो ३६७२$\frac{१३}{६१}$ माइल का चमकता हुआ प्रकाशवान घेरा २००० माइल के राहु के काले घेरे के चौतरफ चमकता हुआ बाकी रह जायगा। मगर हमें अमावस्या को जो दिखाई दे रहा है, वह सर्व विदित है यानी प्रकाश कतई दिखाई नहीं देता। राहु का यह विमान यदि चन्द्रमा से बहुत दूर हमारी पृथ्वी की तरफ बतला देते तो २००० माइल का काला गोल चक्कर ३६७२ माइल के प्रकाशवान गोल चक्कर के सामने आ कर हमें चन्द्रमा को ढक कर दिखा देता मगर जीवाभिगम सूत्र में राहु का विमान चन्द्रमा के विमान से चार अङ्गुल नीचे चलता है, यह कह कर इसकी भी रात काट दी यानी गुञ्जाइश नहीं रहने दी। यह है सर्वज्ञता के व्यावहारिक ज्ञान का नमूना। चन्द्र विमान के १५ भाग किये हैं जिनमें से एक एक भाग प्रति दिन राहु का विमान कृष्णपक्ष में ढकता रहता है और शुक्लपक्ष में खोलता रहता है। राहु और चन्द्रमा इन दोनों के विमान गोल शकल के हैं। एक श्वेत चमकते हुए गोल चक्कर को दूसरे काले वैसे ही गोल चक्कर से (व्यास के १५ भाग बना कर एक एक पर) १५ दफा ढका जाय और इसी तरह वापिस

खोला जाय तो ढकते और खोलते समय जो जो शकलें चमकते हुए श्वेत चक्कर की बनेंगी, जैन शास्त्रों के बताये अनुसार ठीक वैसी शकलें चंद्रमा की दिखाई देनी चाहिये मगर ढकाई के समय शेष के दो तीन दिन और खुलाई के समय शुरुआत के दो तीन दिन (सो भी यथार्थ नहीं) के सिवाय बाकी के सब दिनो मे वैसी शकलें किसी समय नहीं बनतीं। राहु के विमान की उस तरफ की गोलाई जिस तरफ चन्द्रमा के विमान के भाग को ढकती रहती है अपनी गोलाई को मिटाती हुई सीधी लम्बी बन कर विपरीत दिशा मे हो जाती है *। यह है सर्वज्ञों की सूझ। चन्द्रमा के ५६/६१ योजन के व्यास के चमकते हुए गोल चक्कर पर कलाएँ दिखलाने के लिये राहु के गोल काले विमान के व्यास की (दो कोस के विमान की कल्पना करके तो मूर्खों के सामने भी हास्यास्पद बनना है) आधे योजन की कल्पना करने मे उसके होने वाले असर को विचारने मे एक साधारण दिमाग जितना भी काम नहीं लिया गया।

कभी कभी कृष्ण पक्ष मे या शुक्ल पक्ष मे चन्द्रमा के गोल पिन्ड का कुछ भाग धन्वाकार चमकता हुआ प्रकाशवान और शेष भाग अत्यन्त धुधला दिखाई पडता है। चन्द्रमा के इस धुधले भाग पर सूर्य्य का प्रकाश सीधा नहीं पड़ता परन्तु पृथ्वी

---

*यह प्रसग चित्र देकर जितना स्पष्ट समझाया जा सकता है, उतना केवल भाषा से नहीं। मगर समझने के लिये भाषा को सरल बनाने का यथा साध्य प्रयत्न किया है। —लेखक।

से होकर पड़ता है जिससे चन्द्रमा पार्थिव प्रकाश (Earth shine) से चमकता है।

चन्द्रमा की कलाओं के बाबत राहु की निराधार कल्पना के खन्डन मे ऊपर कही हुई बाते तो है ही, मगर चन्द्रमा पर पार्थिव (Earth shine) से दिखाई देनेवाले इस धुधले भाग को जब हम देखते है तो सर्वज्ञो के बताये हुए राहु के गोल चक्कर की कल्पना काफूर हो जाती है यानी नहीं टिकती। यदि ध्रुव राहु (नित्य राहु) का कोई विमान गोल चक्कर का होता और चन्द्रमा को ढके हुए होता (कुछ) तो क्या हम चन्द्रमा के पिन्ड की सम्पूर्ण गोलाई की शकल देख पाते ? कदापि नहीं। जितने भाग पर राहु का गोल चक्कर आ जाता, चंद्रमा की गोल रेखा (Line) को दबा देता। धुधला प्रकाश हम देख ही नहीं पाते। पाठकवृन्द, इस राहु के विमान की कल्पना ने तो सर्वज्ञो की सूझ पर अच्छी तरह प्रकाश डाल कर दिखा दिया कि व्यावहारिक ज्ञान शायद ही काम मे लाया गया हो।

चद्रमा के पिन्ड मे जो काले धब्बे (Spots) दिखाई देते है, उनके बाबत जैन शास्त्रो मे कही कुछ लिखा नजर नहीं आता हालाकि यह धब्बे बिना किसी यत्र की सहायता के आखो से दिखाई देते है। इन धब्बो के बाबत भी कोई मनगढन्त कल्पना अवश्य होनी चाहिये थी परन्तु इसके बाबत किस कारण से मौन रहे, यह समझ मे नहीं आता।

सम्पादकीय टिप्पणी

शास्त्रों की बातें !

इस शीर्षक की श्री बच्छराजजी सिंघी (सुजानगढ) की लेखमाला 'तरुण' मे मई के अक से निकल रही है। उसके बारे में तरह तरह की चर्चा हुई है। कुछ-लोगों ने हमे यह लिखा है कि लेखक शास्त्रों पर आक्रमण कर रहा है, इसलिये इस तरह की लेखमाला को 'तरुण' में स्थान नहीं दिया जाना चाहिये। कुछ लोगों ने यह भी लिखा है कि भूगोल-खगोल का विषय हमारे जीवन के निर्माण और शोधन से बहुत ताल्लुक नहीं रखता, इसलिये इसको लेकर व्यर्थ ही ऊहापोह क्यों किया जाय? इन आलोचकों ने, हमारी समझ मे, लेखक का असली उद्देश्य समझने मे गलती की है। लेखक का ध्येय शास्त्रों पर आक्रमण करने का नहीं—यद्यपि साधारण तौर से वैसा खयाल होता है—वरन् उस मनोवृत्ति पर आक्रमण करने का है जो किसी भी बात को शास्त्रों से समर्थन मिले बिना स्वीकार नहीं कर सकती तथा शास्त्रों की बातों की मान्यता और पालन मे समय का सापेक्ष्य स्वीकार नहीं करती। हमारा खयाल यह है कि आदमी जिस समय जो बात कहता है, उस समय की उस की दृष्टि से तो वह सत्य ही होती है, लेकिन दूसरे मौके पर उस दृष्टि मे परिवर्तन हो जाने के कारण वह असत्य हो जा सकती है। यह परिवर्तन

किसी भी कारण से हो सकता है—चाहे ज्ञान की वृद्धि से या ज्ञान की कमी से। पहली दृष्टि से हमे शास्त्रों की सत्यता स्वीकार करने मे कोई आपत्ति नहीं, यानी हम यह मान सकते हैं कि जिस शास्त्र-रचयिता ने भूगोल-खगोल सम्बन्धी जो बातें लिखी हैं, वे उसकी उस समय की दृष्टि के अनुसार सत्य थीं। पर अब कोई यदि यह कहे कि उसमे सार्वकालिक और सार्वभौमिक सत्य कहा हुआ है, तो हम उसे बुद्धि और ज्ञान की जड़ता तथा अन्धश्रद्धा के सिवाय और कुछ नहीं मानेंगे। हम तो सवाल यह पूछते हैं कि आज हम अपने जीवन मे भौगोलिक विषय मे किस आधार पर चलते हैं? यदि शास्त्रों मे बताई हुई दृष्टि से हमारा आज काम नहीं चलता, तो वाजिब यही है कि हम अपनी दृष्टि मे परिवर्तन करें, न कि जीवन मे दूसरी बात पर चलते हुए भी केवल शास्त्र के अक्षर मानने की जिद कर अपने आप को हास्यास्पद बनावें। शास्त्र मनुष्य के ज्ञान के विकास के लिये लिखे गये थे, न कि उस पर बन्धन डालने के लिये।

कुछ लोगो की ओर भी एक अजीब दलील इस सम्बन्ध मे मालूम हुई है। वे कहते हैं कि जिस आधुनिक विज्ञान का सहारा लेकर शास्त्रों की बातों का असामंजस्य दिखलाने का प्रयत्न किया जा रहा है, वह स्वयं भी अपूर्ण और गति-शील है। इस तथ्य के समर्थन मे एक सज्जन ने सर जेम्स जीन्स जैसे विश्व-विश्रुत विज्ञान-वेत्ता के लेख के कुछ अंश उद्धृत किये हैं। इन पंक्तियोंको उद्धृत करते समय लेखक शायद यह भूल गये कि

उनकी बात ठीक इसलिये नहीं है कि सर जेम्स जो कहते है, वह उनके शास्त्र नही कहते। सर जेम्स के शब्दों मे तो एक विज्ञान वेत्ता की प्रणाली का पूरा प्रतिपादन है। सच्चा वैज्ञानिक किसी वस्तु को अन्तिम नही मानता, इसलिये उसकी शोध जारी रहती है। विज्ञान विज्ञान ही इसलिये है कि उसकी ज्ञान की भूख मिटी नहीं है। शास्त्रों मे आए हुए वर्णनों को सर्वज्ञ के वचन बता कर उससे रत्ती भर भी इधर-उधर विचार करने मे ही जिन्हें अपनी धर्म-साधना खंडित हुई लगती है, वे अपनी ओर से अपनी बातों के समर्थन के लिये पेश किये हुए सर जेम्स जीन्स के इस वाक्य को फिर पढ़ें और उस पर गहराईसे विचार करें—"जो कुछ कहा गया है और जितने निर्णय विचारार्थ पेश किये गये हैं, वे सब स्पष्टतया अनुमानजनित और अनिश्चयात्मक है।" इन शब्दो मे सच्चे वैज्ञानिक की दृष्टि है। अगर सब कुछ कहने के बाद शास्त्र भी ऐसी ही बात कहते हो तो सर्वज्ञ को बीच मे डाल कर विवाद करने की जरूरत नही और वे ऐसा नहीं कहते हों, तो उनमे कम से कम वैज्ञानिक दृष्टि तो नहीं माननी चाहिये। इसलिये, श्री किशोरलाल घ० मशरूवाला के शब्दो मे मैं कहूगा "शास्त्रों की मर्यादा को समझ कर अगर हम उनका अध्ययन करें तो वे हमारे जीवन मे सहायक हो सकते है। नहीं तो वे जीवन पर भार रूप हो जाते है और फिर न केवल कबीर जैसों को ही, वरन् ज्ञानेश्वर सरीखों को भी उनकी अल्पता बतलानी पड़ती है।"

खगोल वर्णन : चन्द्रमा

चद्रमा के विषय मे जैन शास्त्रो की जो बातें ऊपर कही गई है, वे सब एक ही चंद्रदेव के बावत की है। पहले बताया जा चुका है कि हमारे जम्बू द्वीप मे दो चद्र है और अढाई द्वीप तक, जहा तक कि मनुष्यो की आवादी का सम्बन्ध है, १३२ चद्र है। इसके बाद असंख्यात द्वीप समुद्रो के असख्य ही चद्र है और सब के सब स्थिर है यानी परिभ्रमण नहीं करते।

नीचे दिखी तालिका से यह पता लगेगा कि अढाई द्वीप तक भ्रमण करने वाले कितने चद्रमा है और कितना उनका परिवार है। एक चद्रमा के परिवार मे २८ नक्षत्र, ८८ ग्रह और ६६९७५ कोटाकोट (यानी ६६९७५ कोट को ६६९७५ क्रोड से गुना करने से जो संख्या प्राप्त हो) तारे है।

द्वीप-समुद्रो के नाम	चन्द्र	नक्षत्र	ग्रह	तारे
जम्बू द्वीप	२	५६	१७६	१३३९५० कोडाकोड
लवण समुद्र	४	११२	३५२	२६७९०० —"—
धातकी खण्ड द्वीप	१२	३३६	१०५६	८०३७०० —"—
कालोदधि समुद्र	४२	११७६	३६९६	२८१२९५० —"—
पुष्करार्ध द्वीप	७२	२०१६	६३३६	४८२२२०० —"—
जोड	१३२	३६९६	११६१६	८८४०७०० कोडाकोड

जैन शास्त्रों मे प्रत्येक चंद्र और सूर्य को ज्योतिषी देवों का इन्द्र (राजा) बतलाया है और प्रत्येक चंद्र और सूर्य नामक इन्द्र के २८ नक्षत्र ८८ ग्रह और ६६६७५ क्रोडाक्रोड (४४६१५०-६२५०००००००००००००० तारों का परिवार है। जम्बूद्वीप जिसको एक लाख योजन लम्बा-चौडा गोलाकार समतल भूभाग बतलाया है, उसमे दो चंद्र और दो सूर्य मय अपने अपने उपर्युक्त परिवार के भ्रमण कर रहे हैं। इन सब के विमानो का क्षेत्रमान जम्बूद्वीप के लक्ष योजन के क्षेत्रमान से बहुत अधिक होता है, अतः इसमे यह कैसे समा सकते हैं—इस के लिये एक जैन ग्रंथकार ने शंका उत्पन्न की और फिर वहीं पर चित्त को संतोष देने के लिए समाधान यह किया है कि 'तत्वं केवलीगम्यं' यानी सर्वज्ञ ही जाने।

जैन शास्त्रों मे पाच प्रकार के संवत्सर बतलाये हैं। नक्षत्र संवत्सर, युग संवत्सर, प्रमाण संवत्सर, लक्षण संवत्सर और शनैश्चर संवत्सर। युग संवत्सर के ५ भेद किये है—१ चद्र, २ चंद्र, ३ अभिवर्धन, ४ चंद्र, ५ अभिवर्धन। इनमे का पहिला चंद्र संवत्सर १२ मास का, दूसरा चंद्र संवत्सर १२ मास का, तीसरा अभिवर्धन सवत्सर १३ मास का, चौथा चंद्र संवत्सर १२ मास का, पाचवा अभिवर्धन सवत्सर १३ मास का है। इस प्रकार एक युग के पाच संवत्सर ६२ महीनों के होते है। यहां पर अभिवर्धन अधिक मासके संवत्सरका नाम है। ऊपर बतलाये हुए हिसाब से पांच वर्ष (एक युग) मे दो अधिक मास हुए इस

प्रकार मानने से ६५ वर्षों में ३८ अधिक मास हुये मगर ६५ वर्षों के वर्त्तमान पञ्चाङ्गों के अधिक मास देखने से ३५ ही अधिक मास पाये जायेंगे कारण अधिक मास होने का यह नियम है कि १६ वर्षों मे ७ अधिकमास होते हैं। जैन शास्त्रो के और वर्त्तमान भारतीय ज्योतिष गणना के हिसाब मे सिर्फ ९५ वर्षों मे ३ अधिक मास का अन्तर पडता है। अगर जैन शास्त्रो के अनुसार कई शताब्दियों तक अधिक मास का बरताव किया जाय तो नतीजा यह होगा कि वैसाख-जेठ के महीने मे सख्त सर्दी और पौष-माघ मे सख्त गरमी की ऋतु का भी अवसर आ जायगा। यह है सर्वज्ञो की गणित के अन्तर का नमूना।

वर्तमान विज्ञान के अन्वेषणो से चन्द्रमा की बाबत बहुत बातें विस्तार से जानी गई है जिन को इस छोटे से लेख मे लिखना असम्भव सा है। मगर थोडी सी बातय हा बतलाने की कोशिश करूंगा। चन्द्रमा गेन्द की तरह एक गोलाकार पिन्ड है जिसका व्यास २१६० माइल से २४६ गज कम का है। सूर्य्य के चारो तरफ घूमने वाले पिन्डो को ग्रह कहते हैं। हमारी पृथ्वी, मगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, युरेनिश, नेपच्युन, प्लुटो आदि ग्रह है जो सूर्य्य के चौगिर्द घूमते रहते हैं। इन ग्रहो के चौगिर्द घूमने वाले पिन्डो को इनके उपग्रह कहते हैं। चन्द्रमा हमारी पृथ्वी का उपग्रह है और पृथ्वी के चौगिर्द दीर्घ वृत्त मे घूमता है। इसी लिये कभी छोटा और कभी बडा दिखाई पड़ता है। चन्द्रमा पृथ्वी से २२१६१० माइल की दूरी पर है

मगर यह दूरी वृत्त के अनुसार कुछ कम ज्यादा होती रहती है। इस वृत्त पर एक दफा घूमने में चन्द्रमा को २७ दिन ७ घन्टे ४३ मिनट और ११$\frac{1}{2}$ सेकिन्ड लगते हैं। खगोल वर्ती पिन्डों में चन्द्रमा हम से निकटतम है। चन्द्रमा स्वयं प्रकाशवान पिन्ड नहीं है, पृथ्वी की भाति यह भी सूर्य्य से प्रकाश पाता है। सूर्य्य की किरणें चन्द्रमा पर पडती है, फिर शीशे की भाति उस पर से वापिस आकर पृथ्वी पर पडती हैं जिससे स्निग्ध मनोहर चाँदनी छिटक जाती है। चन्द्रमा घूमते घूमते जिस वक्त पृथ्वी और सूर्य्य के बीच मे आता है, तब हम उसे देख नहीं सकते क्योंकि जो भाग सूर्य्य के सामने है वह हम से छिपा रहता है और यही अमावश्या है। जिस वक्त चन्द्रमा और सूर्य्य के बीच मे पृथ्वी आ जाती है तो चन्द्रमा दिखाई पडता है। हम सदैव चन्द्रमा का आधे से कुछ अधिक भाग यानी ५९ भाग देख पाते है। चन्द्रमा पृथ्वी की तरह अपने अक्ष पर भी घूमता है और पृथ्वी की परिक्रमा भी करता है। यह दोनो घुमाव करीव एक मास मे समाप्त होते हैं चन्द्रमा के पृथ्वी के चारो ओर घूमने के कारण ही ग्रहण होता है। चन्द्रमा जव पृथ्वी और सूर्य्य के वीच मे आ जाता है तो सूर्य्य ग्रहण होता है और जव चन्द्रमा और सूर्य्य के वीच मे पृथ्वी आ जाती है तो चन्द्र ग्रहण हो जाता है। चन्द्र ग्रहण सब जगह एक सा दिखाई देता है, कहीं कम और कहीं अधिक नहीं, मगर सूर्य्य ग्रहण सब जगह दिखाई नहीं देता कारण जिन देश वालो की दृष्टि के सामने

चन्द्रमा आकर सूर्य्य को ढकता है, वे ही सूर्य्य ग्रहण देख सकते हैं। उनके सिवाय और देश वालों को पूरा सूर्य्य दिखाई देता है। सूर्य्य ग्रहण के समय दूरदर्शक यंत्र से देखने से चन्द्रमा सूर्य्य विम्ब पर से खिसकता हुआ स्पष्ट दिखाई पड़ता है। सूर्य्य ग्रहण में विम्ब के पश्चिम दिशा से स्पर्श और पूर्व दिशा से मोक्ष होता है। सूर्य्य ग्रहण सर्वदा अमावश्या और चन्द्र ग्रहण सर्वदा पूर्णिमा को होता है। चन्द्रमा पृथ्वी के चारों तरफ घूमता है और पृथ्वी सूर्य्य के चारों तरफ घूमती है। ऐसी दशा मे प्रति मास ग्रहण होना चाहिये मगर चन्द्रमा के आकाश पथ का धरातल पृथ्वी के आकाश पथ के धरातल से भिन्न है और यह पृथ्वी के धरातल से सवा पाच डिगरी का कोन (Angle) बनाता है। इसलिये प्रति मास ग्रहण नहीं हो पाता। ग्रहण तब ही होता है जब चन्द्रमा पृथ्वी के आकाश पथ के धरातल मे आ जाता है जहां इन दोनो के आकाश पथ एक दूसरे से मिलते हैं। चन्द्रमा के पिन्ड पर जो धब्बे Spots दिखाई देते हैं, वे पहाड़ है, जिनमे अधिकाश ज्वालामुखी पहाड़ है परन्तु अब इन ज्वालामुखी पहाडो मे अग्नि नहीं निकलती, केवल आकार मात्र रह गये हैं। इन पहाडो के बीच मे तराईया और सैकडो कोस लम्बे मैदान पडे हैं। इनके अतिरिक्त कहीं कहीं सैकडो कोस लम्बी और तीन चार सौ गज गहरी तथा कोस से भी अधिक चौडी दरार दिखाई देती है। चन्द्रमा पर जल और वायु दोनो का अभाव सा है, इसीलिये वहा पर हमारी पृथ्वी की भांति

वृक्ष, पशु, पक्षी, मनुष्य आदि का होना सम्भव नहीं। चन्द्रमा पर हवा न होने के कारण वहाँ शब्द भी सुनाई नहीं पड सकता चंद्रमा पर वायु मण्डल न होने के कारण जिस तरफ सूर्य्य का प्रकाश पडता है, वहा पर अत्यन्त गरमी और छाया की तरफ अत्यन्त सरदी पड़ती है।

चंद्रमा पर गुरुत्वाकर्षण बहुत ही कम है। चंद्रमा के बाबत की विज्ञान द्वारा जानी हुई बातें बहुत अधिक हैं। इस छोटे से लेख मे कहाँ तक लिखी जायँ। केवल थोडी सी बातें लिखकर संतोष करना पडा है।

चंद्रमा खगोल वर्ती पिन्डों में हमारे सब से निकट है। इसलिये वर्तमान विज्ञान के अन्वेषणों से इसके बाबत जो जो बाते जानी गई हैं, वे बहुत सही सही और स्पष्ट हैं। सही सही बातें जाने हुए ऐसे पिन्ड के बाबत बैल, हाथी, घोडे के रूपों द्वारा आकाश मे उठाये फिरने आदि नाना तरह की अर्थहीन कल्पना करके सर्वज्ञता का परिचय देना कहा तक सत्य है, यह तो विचार शील पाठकों के खुद के समझने का विषय है, मगर ग्रहणों के अन्तर-काल और नित्य, पूर्ण राहु की कल्पना द्वारा बताये हुए प्रसंगों के असत्य साबित होने के लिये हम दावे के साथ कह सकते हैं कि इन सर्वज्ञ वचनो को सत्य साबित करना एक विचारशील मनुष्यके लिये तो असम्भव है। अब अगले लेख मे मैं यह बताऊँगा कि मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि आदि के विषय मे हमारा जैन शास्त्र क्या क्या कहता है और वर्तमान विज्ञान के अन्वेषण क्या है ?
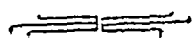
'तरुण जैन' नवम्बर सन् १९४१ ई०

खगोल वर्णन : अन्य ग्रह

गत लेखों मे आपने देखा ही है कि जैन शास्त्रों मे कही हुई एक आध नहीं बल्कि अनेक बातें प्रत्यक्ष और वर्तमान विज्ञान के अन्वेषणो से बताये हुए वर्णन के सामने असत्य प्रमाणित हो रही हैं। पिछले लेखों में मैंने कहा है कि जैन शास्त्रो मे लिखी बहुत सी बातें असत्य असम्भव और अस्वाभाविक प्रतीत होती हैं। अभी तक मैंने केवल थोड़े से उन्हीं प्रसंगो पर लिखने का प्रयास किया है जो प्रत्यक्ष मे असत्य प्रमाणित हो रहे हैं। यदि देखा जाय तो खगोल-भूगोल के विषय की जैन शास्त्रों की सारी कल्पनाएँ सर्वथा कल्पित मालूम होती है। वास्तव मे उस जमाने मे न तो यंत्रो का आविष्कार ही हुआ था और न विज्ञान के नाना तरह के नियमों और गणित का विकास हुआ था। ऐसी दशा मे कल्पना के सिवाय और चारा ही क्या था, मगर सर्वज्ञता के दावे मे ऐसी निराधार कल्पनाओं का होना शोभा की बात नहीं। पिछले लेखो मे यह दिखाया जा चुका है कि जैन शास्त्रो मे सूर्य्य और चद्रमा को ज्योतिषी देवों के इन्द्र मान कर प्रत्येक इन्द्र के २८ नक्षत्र, ८८ ग्रह और ६६९७५ कोटाकोड तारो का परिवार बताया है। इन २८ नक्षत्रों का सूर्य और चद्रमा के साथ योग, गति, समय कुलोपकुल आदि नाना तरह

के सम्बन्ध का 'सूर्य्यप्रज्ञप्ति' 'चंद्रप्रज्ञप्ति' आदि कुछ सूत्र ग्रंथों में काफी वर्णन है, मगर जहां तक मेरा अनुभव है वर्तमान भारतीय ज्योतिष के वर्णन और आकडों का मुकाबिला किया जाय तो बहुत सी इन सूत्रों की बातें असत्य प्रमाणित हो जायगी। अवकाश के अनुसार इन के विषय में भी खोज शोध करके असत्य साबित होने वाली बातों पर कभी आगामी अङ्कों में लिखूंगा। प्रस्तुत लेख मे मुझे केवल ग्रहों के विषय मे कुछ लिखना है। ग्रह उसी आकाशीय पिण्ड को कहते हैं जो सूर्य्यके चौगिर्द घूमता है और उपग्रह उस पिण्ड को कहते हैं जो सूर्य्य की तरह अपनी धुरी पर भले ही घूमता हो मगर किसी दूसरे पिण्ड के चौगिर्द नहीं घूमता। जैन शास्त्रों मे ग्रह नक्षत्र तारे आदि की इस प्रकार की परिभाषा अथवा इस प्रकार का कोई भेद नहीं बतलाया है। उपग्रह का तो जैन शास्त्रो में कहीं नाम भी नज़र नहीं आता, कारण दूर-दर्शक यंत्रों के अभाव मे ग्रहों के चौगिर्द घूमने वाले पिण्ड उन्हे कैसे दिखाई पडे और बिना दिखाई पड़े नाम दें भी कैसे? जैन शास्त्रो मे ८८ ग्रह बतलाये है जो इस प्रकार है।

१ अङ्गारक (मंगल) २ विआलक, ३ लोहिताक्ष, ४ शनेश्चर, ५ आधुनिक, ६ प्राधुनिक, ७ कण, ८ कणक, ९ कणकणक, १० कण विताणक, ११ कण संतानिक, १२ सोम, १३ सहित, १४ अश्वासन, १५ कार्योपग, १६ कच्छुरक, १७ अजकरक, १८ दुंदभक, १९ शंख, २० शखनाभ, २१ शख वर्णाभ, २२ कंस,

२३ कंशनाभ, २४ कंश वर्णाभ, २५ नील, २६ नीलाभास, २७ रुप, २८ रुपावभास, २९ भस्म, ३० भस्मराशी, ३१ तिल, ३२ तिल पुष्पवर्ण, ३३ दक, ३४ दक वर्ण, ३५ काय, ३६ वंध्य, ३७ इन्द्राग्नि ३८ धूमकेतु, ३९ हरि, ४० पिंगलक, ४१ बुध, ४२ शुक्र, ४३ बृहस्पति, ४४ राहु, ४५ अगस्तिक, ४६ माणवक, ४७ कामस्पर्श, ४८ धूहक, ४९ प्रमुख, ५० विकट, ५१ विसंधि कल्प, ५२ प्रकल्प, ५३ जटाल, ५४ अरुण, ५५ अगिल, ५६ काल, ५७ महाकाल, ५८ स्वस्तिक, ५९ सौवस्तिक, ६० वर्द्धमानक, ६१ प्रलम्ब, ६२ नित्य लोक, ६३ नित्योद्योत, ६४ स्वयंप्रभ, ३५ अवभास, ६६ श्रेयस्कर, ६७ क्षेमंकर, ६८ आभंकर, ६९ प्रभंकर, ७० अरजा ७१ विरजा, ७२ अशोक, ७३ वितशोक, ७४ विमल, ७५ वितप्त, ७६ विवत्स, ७७ विशाल, ७८ शाल, ७९ सुव्रत, ८० अनि वृत्ति, ८१ एक जटि, ८२ द्विजटि, ८३ कर, ८४ करिक, ८५ राजा, ८६ अर्गल, ८७ पुष्पकेतु, और ८८ भावकेतु।

वर्तमान भारतीय ज्योतिष मे सूर्य्य, चद्र, मगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र शनि, राहु और केतु, यह ग्रह माने है। यह देखने मे आता है कि सनातन धर्म ग्रथो मे किसी वस्तु की सख्या यदि १० हजार बताई है तो वडप्पन जताने के लिये जैन शास्त्रो मे उसी को वटाकर ५०-६० हजार वतलाने का प्रयास किया है। इस प्रकार सख्याओ को वटा वटा कर वताने की प्रतिस्पर्धा (competition) वृत्ति अनेक स्थलो मे देखने मे आती है जिसका विशेष वर्णन किसी अन्य लेख मे करूगा। ८८ ग्रहों

की इस नामावली पर भी ध्यान पूर्वक विचार करने से यही अनुमान होता है कि केवल ग्रहों की संख्या अधिक दिखाने की नियत से इन ग्रहों की संख्या ८८ की गई है अन्यथा नामकरण का क्रम, "कण, कणक, कणकणक, कणविताण, कण सतानिक, शंख, शंखनाभ, शखवर्णाभ, कंश, कंशनाभ, कंश वर्णाभ," आदि की तरह घडा हुआ सा प्रतीत नहीं होता। ८८ ग्रहों की इस नामावली मे मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु नाम भी आ गये हैं। केवल मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु की समभूमि से ऊंचाई को छोड कर सब ग्रहो का दूसरा दूसरा वर्णन जैन शास्त्रों में सब एकसा है जो इस प्रकार है। सूर्य्य और चंद्रमा की तरह इन ग्रहों के विमानों को भी, प्रत्येक के विमानों को ८००० देव उठाये आकाश मे भ्रमण कर रहे हैं जिनमे २००० देव पूर्व दिशा मे सिंह का रूप किये हुए, २००० देव दक्षिण दिशा मे हाथी का रूप किये हुए, २००० देव पश्चिम दिशा मे वृषभ का रूप किये हुए २००० देव उत्तर दिशा में अश्व का रूप किये हुए हैं। इन ग्रह देवो के भी प्रत्येक के वही चार चार अग्रमहीषिया (पटरानिया) है और वैसी ही पटरानियो के परिवार की देविया है जैसा सूर्य्य चंद्र के है। चार चार हजार सामानिक (भृत्य) देव सोलह सोलह हजार आत्म रक्षक (Body guard) देव और सात सात अनिका और अन्य स्व विमान वासी देव देवियां सपरिवार सब सेवा मे हाजिर हैं। सब के मस्तक पर स्व स्व नामांकित मुकुट है, सब का

(कुछ को छोडकर) तप्त वर्ण जैसा दिव्य वर्ण है। इन ग्रहों के विमानों की लम्बाई चौडाई के बाबत राहु के विमान का नमूना तो आप गत लेख मे देख ही चुके है कि जीवाभिगम सूत्र क्या कह रहा है और जम्बूद्वीप पन्नति क्या कह रहा है। जीवाभिगम सूत्र ग्रहों के गोलाकार विमानो की लम्बाई चौडाई आधा योजन की और मोटाई एक कोस की बता रहा है। यह है ग्रहो के बाबत का कुछ वर्णन। नक्षत्र और तारो के लिये भी वही चार अग्रमहिषिया (पटरानिया) और उनके परिवार की देविया और हाथी, घोड़े आदि के रूप मे उठाये आकाश मे भ्रमण करने वाले देवताओ आदि का अर्थहीन वर्णन उसी प्रकार है जैसा सूर्य्य चद्र और ग्रहो का है। आकाश मे उडाये फिरने वाले हाथी घोड़े रूप वाले देवो की सख्या मे कुछ कमी कर दी है। नक्षत्रो के प्रत्येक के विमान को ४००० देव उठाये फिरते है जो चारो दिशाओ मे हाथी, घोड़े, सिंह, बैल के रूप मे एक एक हजार से तकसीम कर दिये है और तारो के प्रत्येक के विमान २००० देव उठाये फिरते है जो चारो दिशा मे ५०० हाथी, ५०० घोडे, ५०० सिंह और ५०० बैल के रूप मे है।

वाले यह देव तो स्वेच्छा से अपने आपको अन्य देवों के सामने इन्द्र और बड़े देवों के सेवक कहला कर बड़प्पन और सम्मान पाने की लालसा से विमानों को उठाये फिरते हैं, और इसी मे सुख अनुभव कर रहे है। आश्चर्य है, शास्त्रो मे इन हाथी घोड़े आदि रूप मे निरन्तर भ्रमण करने वाले देवों के विषय मे विश्राम के लिये बदलाई कराने आदि आदि का कुछ भी प्रबंध नहीं बताया। बिचारे रात दिन एक क्षण भी बिना विश्राम इतनी लम्बी लम्बी आयुष्य (जघन्य $\frac{1}{8}$ पल्योपम) किस प्रकार व्यतीत करते होंगे। जैन शास्त्रों मे इन ज्योतिषी देवो के विषय की कई बातें समन्वय रूप मे लिखी हुई है उनमे से कुछ इस प्रकार हैं—ज्योतिषी देवों की गति की शीघ्रता की तुलना के विषय मे श्री गौतम स्वामी के प्रश्न के उत्तर मे भगवान फरमाते हैं कि चन्द्रमा से सूर्य की गति शीघ्र, सूर्य से ग्रहो की गति शीघ्र, ग्रहों से नक्षत्रो की गति शीघ्र और नक्षत्रो से तारो की गति शीघ्र है। सब से मंद गति चन्द्रमा की और सब से शीघ्र गति तारो की है। ज्योतिषी देवों की सम्पत्ति (Financial position) के विषय मे प्रश्न के उत्तर मे भगवान् फरमाते है कि तारो से अधिक सम्पत्ति वाले नक्षत्र, नक्षत्रों से अधिक सम्पत्ति वाले ग्रह, ग्रहो से अधिक सम्पत्ति वाला सूर्य और सूर्य से अधिक सम्पति वाला चन्द्रमा है। सब से अल्प सम्पत्ति वाले तारे और सब से अधिक सम्पत्ति वाला चन्द्रमा है।

ज्योतिषी देवों की संख्या के प्रश्न के उत्तर मे भगवान

फरमाते हैं जितने सूर्य हैं उतने ही चन्द्रमा हैं, चन्द्रमा से नक्षत्र संख्यात गुण अधिक, नक्षत्रो से ग्रह संख्यात गुण अधिक और ग्रहों से तारे संख्यात गुण अधिक हैं। इस प्रकार के अनेक प्रश्न हैं। जैन शास्त्रो मे कुछ ग्रहो की समभूमि से ऊँचाई के बावत जो विशेष वर्णन आता है वह इस प्रकार है।

बुध समभूमि से ८८८ योजन यानी ३५५२००० माइल।
शुक्र समभूमि से ८९१ योजन यानी ३५६४००० माइल।
बृहस्पति समभूमि से ८९४ योजन यानी ३५७६००० माइल।
मंगल समभूमि से ८९७ योजन यानी ३५८८००० माइल।
शनि समभूमि से ९०० योजन यानी ३६००००० माइल।

राहु को चद्रमा के विमान से चार अगुल नीचा यानी ८८० योजन (३५२०००० मील) से चार अङ्गुल नीचा बतलाया है। यह हुआ जैन शास्त्रो मे ग्रहो के विषय का कुछ वर्णन। अब मैं इन ग्रहो के विषय मे वर्त्तमान विज्ञान क्या कह रहा है कुछ वही लिखूगा। सूर्य के चौगिर्द घूमने वाले ग्रहो का अब-तक जो पता लगा है उसमे से कुछ इस प्रकार है। सूर्य के सब से निकट घूमने वाला बुध है इसके पश्चात् एक के पश्चात दूसरे के क्रम से शुक्र, हमारी पृथ्वी, मगळ, अनेक छोटे छोटे अवान्तर ग्रह, बृहस्पति, शनि युरेनस (प्रजापति), नेपच्यून (वरुण), प्लूटो (कुबेर) है।

को ३६५¼ दिन, मंगल को ६८७ दिन, वृहस्पति को ४३३२ दिन, शनि को १०७५९ दिन, युरेनस को ३०६८७ दिन, नेपच्यून को ६०१२७ दिन, प्लूटो को ८९६४० दिन। हमारी पृथ्वी से सूर्य चन्द्र और ग्रह कितने मील की दूरी पर है वह इस प्रकार है। चन्द्रमा २२१६१० मील, शुक्र २३७०१००० मील, मंगल ३३९१-६००० मील, वुध ४८०२०००० मील, सूर्य ९२९६५००० मील, युरेनश १६०६१८३००० मील, नेपच्यून २६७४३७५००० मील,। सब ग्रह सूर्य्य के चौगिर्द दीर्घवृत (अण्डाकार वृत) मे घुमते हैं इसलिये इन की दूरी घुमाव के अनुसार महत्तम और न्युनतम होतीर हती है।

सब ग्रह अपनी अपनी धुरी पर घूमते हैं। एक घुमाव मे किस को कितना समय लगता है, वह इस प्रकार है—हमारी पृथ्वी को २४ घंटे और कुछ मिनट, मंगल को २४ घटे ३१ मिनट, वृहस्पति को १० घंटे, शनि को १०½ घटे, शुक्र को २३ घंटे २१ मिनट। वुध सूर्य्य के अति निकट है, इसकी एक ही बाजू दिखाई देती है इसलिये पता नहीं लगता। युरेनस, नेपच्यून, प्लूटो हमसे अत्यन्त दूरी पर है। अत १०० इंच वाले दूरदर्शकों से इनका पृष्ठ स्पष्ट दिखलाई नहीं पड़ता, इसलिये अभी तक पता नहीं है, परन्तु आगामी वर्षों मे जब २०० इंच के व्यास का दूर-दर्शक यत्र तैयार हो जायागा तो आसानी से पता लगने की सम्भावना है। इन ग्रहोंके जो उप ग्रह दिखाई दिये है वे इस प्रकार है—हमारी पृथ्वी का एक उपग्रह

चंद्रमा है (जिस का वर्णन पिछले लेख में किया जा चुका है) वृहस्पति के ६ उपग्रह हैं, शनि के १० हैं, मंगल के २ हैं, युरेनस के ४ हैं, और नेपच्यून का एक उपग्रह है। इन ग्रहों का कुछ अलहदा अलहदा वर्णन मैं अगले लेख में करूंगा।

'तरुण जैन' दिसम्बर सन् १९५१ ई०

है। सामने के पृष्ठ पर निरन्तर भयानक गरमी और दूसरी तरफ भयानक शीत तथा एक तरफ निरन्तर दिन और दूसरी तरफ रात रहती है। बुध पर कुछ धब्बे और चिन्ह दीख पड़ते हैं, जिससे अनुमान होता है कि चन्द्रमा की तरह वहा भी पहाड़ और दरारें हैं। हमारी पृथ्वी से बुध पर गुरुत्वाकर्षण बहुत कम है। पृथ्वी पर जो वस्तु १½ मन की होगी, बुध पर ½ मन की ही रह जायगी। सूर्य की परिक्रमा करने मे बुध को ८८ दिन लगते हैं, इसलिये बुध पर का वर्ष भी ८८ दिन का होता है। जिस प्रकार सूर्य और पृथ्वी के बीच मे चन्द्रमा के आ जाने से सूर्य-ग्रहण होता है, उसी प्रकार सूर्य और पृथ्वी के बीच बुध के आ जाने से भी रवि-बुध संक्रमण (Transit) होता है। बुध का बिम्ब इतना छोटा है कि इससे सूर्य-ग्रहण तो नहीं होता मगर सूर्य के पृष्ठ पर बुध छोटा सा काला गोल चक्कर प्रतीत होने लगता है। इस प्रकार का रवि बुध संक्रमण सन् १९२७ की १० मई को और सन् १९४० की १२ नवम्बर को हो चुका है, जिसको हमारे यहां के भी कुछ व्यक्तियों ने देखा है। गणित से जो रवि-बुध गमन कुछ आगामी काल के जाने हुए हैं, वे इस प्रकार है—सन १९५३ की १३ नवम्बर, सन् १९६० की ६ नवम्बर, सन् १९७० की ९ मई, सन् १९७३ की ९ नवम्बर, सन् १९८६ की १२ नवम्बर।

शुक्र

सूर्य से बुध के पश्चात् दूसरी कक्षा शुक्र की है। शुक्र सब ग्रहों से हमारी पृथ्वी के ज्यादा निकट है। पृथ्वी से शुक्र २३०००००

मील की दूरी पर है, मगर जो कठिनाइयां हमें बुध को देखने में पड़ती हैं वे ही इसको देखने में भी पड़ती हैं, इसलिये इसके बाबत में भी बहुत थोड़ी बातें जानी जा सकती हैं। शुक्र का मार्ग भी पृथ्वी के क्रांति-वृत्त के भीतर है, और पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य के निकट है, अतः शुक्र भी केवल प्रातःकाल और सायंकाल ही देखा जा सकता है। शुक्र का व्यास ७६०० मील का है और अपने अक्ष पर घूमने में इसको २२५ दिन लगते हैं। सूर्य की परिक्रमा करते हुए भी शुक्र को २२८ दिन लगते हैं, इसलिये शुक्र पर हमारे २२५ दिनों में एक दिन-रात होता होगा। शुक्र की कक्षा पृथ्वी की [illegible]

८ जून को, और सन् २०१२, २११२ तथा २१२५ मे होगा। शुक्र जब पृथ्वी के निकट आ जाता है तो बडा और जब दूर चला जाता है तो छोटा दिखाई पडता है। जब शुक्र हमारी पृथ्वी के और सूर्य के बीच में आ जाता है तब लगभग २३ करोड मील की दूरी पर रहता है, मगर सूर्य से इसकी औसतन दूरी करीब ६७५००००० मील की है।

पृथ्वी

शुक्र के पश्चात् सूर्य से तीसरी कक्षा पृथ्वी की है। पृथ्वी भी ग्रह है, इसलिये ग्रहों के वर्णन के सिलसिले मे इसका भी कुछ वर्णन करना उचित होगा। पृथ्वी का व्यास ७९२६½ मील और परिधि लगभग २४८५६ मील की है। पृथ्वी से सूर्य लगभग ९२९६५००० मील की दूरी पर है। यह तो कहा ही जा चुका है कि सब ग्रह सूर्य के चौगिर्द दीघ वृत्त मे घूमते हैं, अत घुमाव के अनुसार इनकी दूरी महत्तम और न्यूनतम होती रहती है। पृथ्वी की मुख्य दो प्रकार की गतियां हैं, अक्ष-भ्रमण और परिक्रमण। अक्ष-भ्रमण करते पृथ्वी को एक दफा मे २४ घंटे लगते हैं और सूर्य की परिक्रमा करते ३६५¼ दिन लगते हैं। पृथ्वी की कक्षा ५८४६००००० मील की है, जिसका पृथ्वी ६६६०० मील प्रति घंटे और १८½ मील प्रति सेकेण्ड की गति से परिक्रमण करती है। अक्ष-भ्रमण की गति एक मिनिट मे १७½ मील की है। अक्ष-भ्रमण और परिक्रमण के अलावा पृथ्वी की १० सूक्ष्म गतियां और मानी गई हैं, जिनका विवेचन यहां स्थानाभाव से

नहीं किया जा सकता। पृथ्वी की अक्ष-रेखा भ्रमण-पथ से तिरछी स्थित है और ६६½ अंश (डिगरी) का कोण बनाती है। पृथ्वी की गतियों और इस तिरछेपन से ऋतुओं का परिवर्तन होता है। गर्मी और सर्दी के लिहाज से पृथ्वी को भिन्न २ पांच भागों मे विभक्त किया गया है। जिनको पांच कटिबन्ध (Zones) कहते हैं—जैसे उत्तरी शीत-कटिबन्ध, उत्तरी शीतोष्ण-कटिबन्ध, उष्ण-कटिबन्ध, दक्षिणी शीतोष्ण-कटिबन्ध, दक्षिणी शीत-कटिबन्ध। पृथ्वी पर एक ही समय मे कहीं पर कड़ाके की गर्मी और कहीं पर कड़ाके की सर्दी, कहीं पर दिन बहुत बड़े और कहीं पर छोटे, कहीं पर लगातार महीनों बड़े दिन और कहीं पर लगातार महीनों बड़ी रातें—इस प्रकार होने का कारण केवल पृथ्वी का नारंगी की तरह गोल होना, अपने अक्ष पर ६६½ डिगरी से तिरछा होना और कई तरह की गतियों से गमन करना है। दिसम्बर के दिनों मे भूमध्य-रेखा के उत्तरी भाग मे कड़ी सर्दी पड़ती है तो दक्षिणी अमेरिका मे कड़ी गर्मी, और भारत मे सर्दी पड़ती है तो आस्ट्रेलिया मे गर्मी। सूर्य के उत्तरायण होने पर पृथ्वी का उत्तरी भाग जब सूर्य के सामने रहता है तब उत्तरी ध्रुव मे छ महीने की रात होती है। सर्दी के दिनों मे भारत मे रात १३½ घन्टे की और दिन १०½ घन्टे का होता है तब इङ्गलैंड मे रात १८ घन्टे की और दिन ६ घन्टे का होता है। पृथ्वी की गति का प्रभाव चन्द्रमा के प्रकाश पर भी पड़ता है। सर्दी के दिनों मे गर्मी की ऋतु की अपेक्षा चन्द्रमा

में प्रकाश अधिक होता है। सर्दी के दिनों मे सूर्य पृथ्वी से निकट और दक्षिणायण होता है और गर्मी मे पृथ्वी से दूर और उत्तरायण होता है। पृथ्वी का अक्ष ठीक ध्रुवतारे की तरफ रहता है। पृथ्वी का घनत्व २६०००००००००० घन मील है और वजन १६००० शंख मन है। पृथ्वी पर वायु-मण्डल का दबाव औसतन ७½ सेर प्रति वर्ग इञ्च का है और वायुमण्डल रजकण से भरा हुआ है, इसी से आकाश नीला दिखाई पडता है। पृथ्वी की परिक्षेपण शक्ति ०.४५ है यानि सूर्य का प्रकाश पृथ्वी पर जितना आता है, उसका १०० में ४५ भाग बिखर कर वापस लौट जाता है। वर्त्तमान विज्ञान के अन्वेषणों द्वारा पहाड़ों नदियों, समुद्रों, ज्वालामुखी पहाडों, आदि के बनने, होने, मिटने का क्रम वर्षा, हवा, तूफान, भूकम्प आदि के होने, बनने, मिटने आदि के सम्बन्ध की बातें सही सही और विस्तार पूर्वक इतनी अधिक जानी जा चुकी है कि उनको यदि सबको लिखा जाय तो हजारो पृष्ठों का एक बहुत बडा ग्रन्थ बन जाय। इस छोटे से लेख मे कहा तक लिखा जाय ? यदि किसी को इस विषय को जानने की इच्छा हो तो उसे इस विषय के साहित्य को ध्यान पूर्वक पढ़ना चाहिये।

मंगल

मंगल के विषय का वृत्तान्त हम को सौर-चक्र के पिण्डों में पृथ्वी के सिवाय सब से अधिक ज्ञात है। एक तो इसके देखने में वे कठिनाइयां नहीं है जो बुध और शुक्र के विषय मे उपस्थित

होती है, दूसरे यह हमारे बहुत निकट है। मङ्गल का मार्ग पृथ्वी के क्रांतिवृत्त के बाहर है, इसलिये षडभान्तर (opposition) के समय हम उसे वैसा ही देख सकते हैं, जैसा पूर्णिमा के दिन चन्द्र को। सूर्य से दूर होने के कारण हमें उसको रात भर आकाश में देखने का मौका मिलता है। मंगल का व्यास ४२१५ मील का है, और पृथ्वी से करीब ३३९१६३०० मील की दूरी पर है। मंगल सूर्य से लगभग १४१०००००० मील की दूरी पर है और सूर्य की परिक्रमा करने उसे ६८७ दिन लगते हैं। मंगल का वर्ण रक्त वर्ण है और लगभग १५ वें वर्ष उसका रंग विशेष उद्दीप्त दीख पड़ता है,

से होंगे और हरे मैदान वहा की खेती-बाडी और जंगलों के होंगे। नहरों की संख्या बढ़ती जा रही है जिससे अनुमान होता है कि वहा के बाशिन्दे खेती-कास्त के लिये नहरें बढ़ा रहे होंगे। इस वक्त करीब ३५० नहरें भिन्न भिन्न स्थानों पर वहाँ देखी जा रही हैं। इन नहरों में कई नहरें चौड़ाई में करीब बीस बीस मील और लम्बाई में करीब ३५०० मील तक की दिखाई पड़ रही हैं, और बहुत सीधी और नियमानुकूल बनी हुई प्रतीत होती हैं, जिससे मालूम होता है कि वहा के बसनेवाले मनुष्य कलाकौशल में अति प्रवीण हैं। यह भी देखा गया है कि सर्दी के समय जब ध्रुवों के पास बर्फ जमने लगती है तो यह नहरें पतली पड जाती हैं और गर्मी के दिनों मे बर्फ गलने पर मोटी और चौड़ी होने लगती हैं। जहा पर कई नहरें मिलती हैं वहा शाद्वल (Oases) दिखाई पडते हैं। इन नहरों के विषय मे वैज्ञानिकों का कुछ मत-भेद भी है। मंगल के दो उपग्रह हैं जो मंगल के चौगिर्द परिक्रमा करते रहते हैं। एक का व्यास लगभग ३५ मील का है तथा मंगल से करीब ५८०० मील की औसत दूरी पर है और ७½ घन्टे मे मंगल की एक परिक्रमा कर लेता है। दूसरे का व्यास करीब १० मील का है तथा मंगल से १५६०० मील दूर है और ३०¼ घन्टे में मंगल की एक परिक्रमा करता है। मंगल पर गुरुत्वाकर्षण पृथ्वी की अपेक्षा कम है। जो वस्तु पृथ्वी पर १½ मन की होगी वह मंगल पर ½ मन से कुछ ऊपर होगी। मंगल का घनत्व भी

पृथ्वी की अपेक्षा करीब आधे से कुछ अधिक है और आकर्षण केवल एक तिहाई है।

मंगल के पश्चात और बृहस्पति के पहिले एक कक्षा आवान्तर ग्रहों की है। आवान्तर ग्रह सैकड़ों की तादाद में हैं जो करीब पन्द्रह सौ तो देखे जा चुके हैं। आवान्तर ग्रहों का व्यास नीचे में ५ मील और ऊपर में ५०० मील तक का देखने में आता है। सूर्य से आवान्तर ग्रहों की दूरी लगभग २४ कोटि मील की है और परिक्रमा करते लगभग २२०० दिन लगते होंगे। आवान्तर ग्रहों के लिये नाप और समय औसत दरजे से दिया गया है।

गोल गुब्बारे की भांति फूले हुए पिण्ड दीख पड़ते हैं, जो घने बादलों के हैं। बृहस्पति के दोनों ध्रुवों की तरफ लम्बे चौड़े छायायुक्त मैदान पड़े हैं, जिनका रंग गहरा आसमानी दीख पड़ता है। बृहस्पति के पृष्ठ पर सन् १८७८ में एक विशाल रक्त-वर्ण बिन्दु देखा गया जिसका क्षेत्रफल करीब १० कोटि मील का प्रतीत हुआ; फिर सन् १८८३ में वह बिन्दु लुप्त हो गया मगर कुछ वर्षों बाद फिर दिखाई पड़ने लगा, और अब भी दिख पड़ता है। ज्योतिषियों का अनुमान है कि यह बिन्दु बृहस्पति का ही शुद्ध पृष्ठ है, जो कभी कभी घने बादलों से ढक जाता है। बृह-स्पति पर बादल बहुत घने हैं, जिससे उसका पृष्ठ दिखाई पड़ने में बड़ी बाधा रहती है। बृहस्पति के ९ उपग्रह हैं, जिनका भिन्न भिन्न और विस्तृत वर्णन इस छोटे लेख में सम्भव नहीं है। बृहस्पति का पृष्ठ अभी तक वाष्पीय और अत्यन्त गर्म है, जिसको हमारी पृथ्वी की तरह जीवों की आबादी के योग्य बनने में करोड़ों वर्ष लगेंगे, यहां पर जीवधारियों का होना सम्भव नहीं है। बृहस्पति के कुछ उपग्रह उल्टी दिशा में भ्रमण करते हैं। बृहस्पति पर गुरुत्वाकर्षण पृथ्वी से दुगुना है। जो वस्तु पृथ्वी पर डेढ मन की होगी, वह बृहस्पति पर तीन मन की हो जायगी। मगर घनत्व पृथ्वी की अपेक्षा बहुत कम है। पृथ्वी का घनत्व पानी की अपेक्षा ५½ गुणा भारी है मगर बृह-स्पति का १⅓ गुणा ही भारी है।

शनैश्चर

बृहस्पति के पश्चात् सूर्य के गिर्द शनैश्चर की कक्षा है। शनैश्चर के गोल पिण्ड का व्यास ७२५०० मील का है। यह कहा जा चुका है कि सब ग्रहों के यह गोल पिण्ड सूर्य के चौगिर्द अण्डाकार वृत्त में घूमते हैं, जिसके कारण पृथ्वी और सूर्य से जो दूरी ग्रहों की है वह घुमाव के अनुसार महत्तम और न्यूनतम होती रहती है। कुछ वर्षों पहले शनैश्चर की महत्तम और न्यूनतम दूरी नापी गई थी, जो इस प्रकार है। पृथ्वी से महत्तम दूरी १०३०६१२००० मील, न्यूनतम दूरी [illegible] मील और सूर्य से महत्तम दूरी ९३६३८८००० मील, और न्यूनतम दूरी ८३७१७०००० मील की है।

सूर्य की एक परिक्रमा में शनैश्चर को १०७५९ दिन, ५ घण्टे, १६ मिनिट लगते हैं। शनि के पिण्ड से अलग, मगर पिण्ड के चौतरफ एक पतला चपटा वलय (छल्ला) दिखाई पडता है। आकाश में यह एक अनोखा दृश्य है। वलय का का आन्तरिक व्यास १४७६५० मील का, और बाहर का व्यास १७१००० मील का है। दूरदर्शक यन्त्रों से यह वलय, एक के बाद एक करके तीन दिखाई पड़ते हैं, और असंख्य पिण्डों के बने हुए प्रतीत होते हैं। यानी असंख्य उपग्रह इतने पास पास आ गये हैं, जो मिल कर वलय से दिखाई पड रहे हैं। शनि का पृष्ठ भी घने बादलों से घिरा हुआ है। वहाँ का वायुमण्डल अत्यन्त घना प्रतीत होता है। शनि की उत्पत्ति भी

लगभग बृहस्पति की सी ही है। शनि को अक्ष भ्रमण करने में १०३ घण्टे लगते हैं। शनि की गति बहुत धीमी है इसी-लिये इसको शनैश्चर यानी धीरे धीरे चलने वाला कहते हैं। शनि के भी १० उपग्रह हैं, जिनमें अन्तिम उपग्रह बृहस्पति के कुछ उपग्रहों की तरह उलटी दिशा में भ्रमण करता है। शनि का भी ऊपरी पृष्ठ वाष्पीय और अत्यन्त गर्म है, अतः वहां पर भी यहां जैसे जीवधारियों का होना असम्भव है। अलबत्ता शनि और बृहस्पति के कुछ उपग्रहों की दशा ऐसी दिखाई पड़ती है कि उनमें जीवधारियों का होना बहुत सम्भव है। शनि और बृहस्पति की गति मे एक विचित्रता देखी जा रही है। पहिले यह आकाश मे पश्चिम से पूर्व को जाते दिखाई देते हैं, फिर कुछ चल कर रुक जाते हैं, और फिर पश्चिम की तरफ चलने लगते हैं, तथा फिर कुछ दिन पीछे पूर्व को लौट पड़ते हैं। हमारी पृथ्वी से शनि की आकर्षण शक्ति कुछ अधिक है, मगर घनत्व पृथ्वी की अपेक्षा बहुत हलका है।

यूरेनिस

शनि के पश्चात् सूर्य के गिर्द यूरेनिस की कक्षा है। इसका हाल प्राचीन ज्योतिषियों को तो मालूम ही नहीं था। सन १७८१ की १३ मार्च को विलियम हर्सल ने इसको देखा और बताया। यूरेनिस को हमारी भाषा में हम,प्रजापति भी कहते हैं। यूरेनिस का व्यास ३१००० मील का है, और पृथ्वी से १६०६१८३००० मील दूरी पर है। यूरेनिस १०० कोटि मील की

दूरी से सूर्य की परिक्रमा करता है, जिसको एक परिक्रमामें ३०६-८७ दिन लगते हैं। यह ग्रह बहुत अधिक दूरी पर है, इसलिये वर्त्तमान दूर दर्शक यन्त्रों से इसका पृष्ठ स्पष्ट नहीं देखा जा सकता। जब २०० इञ्च के व्यास का दूरदर्शक यंत्र तयार हो जायगा, तब विशेष बातें मालूम होंगी।

नेपच्यून

यूरेनिस के पश्चात् पेरिस के मि० गाल ने सन् १८४३ को २३ सितम्बर को एक ग्रह फिर देखा, जिसका नाम नेपच्यून (वरुण) रखा। नेपच्यून का व्यास करीब ३४००० मील का है, और पृथ्वी से २६७४३७५००० मील की दूरी पर है। नेपच्यून सूर्य से २७९०००००० मील दूरी पर है, और सूर्य की परिक्रमा करने मे इसको ६०१२७ दिन लगते हैं। यूरेनिस की तरह इसका भी विशेष हाल अभी तक जाना नहीं जा सका है।

नेपच्यून के पश्चात् सन् १९३० में एक ग्रह का फिर पता लगा, जिसका नाम प्लुटो (कुबेर) रखा गया है। इसका भी विशेष हाल अभी तक मालूम नहीं हो पाया है।

बातें ऐसी मिलेगी, जो मेरे बताये हुए असत्य, असम्भव और अस्वाभाविक की कोटि में प्रयुक्त दृष्टिगोचर होंगी। प्रस्तुत लेख में भी आपने नोट किया होगा कि बुध और शुक्र में चन्द्रमा की तरह होने वाली कलाएँ, तथा रवि-बुध और रवि-शुक्र के होने वाले संक्रमण और शनि के चौगिर्द अलग दिखाई देने वाले वलय (छल्ले) इन सर्वज्ञों की दिव्यदृष्टि से ओझल रह गये। सर्वज्ञों ने तो अपनी दिव्यदृष्टि में सब ग्रहों को हर तरह से एक समान देखा। इसीलिये तो वे समदृष्टि कहलाते हैं। सच है, गुड़ और खल के मूल्य में अंतर न देखना भी तो एक प्रकार का समदृष्टिपन है। इन लेखों में जो विवेचन किया गया है, उस पर विचार करने से बहुत सी बातें ऐसी हैं, जिनका जैनशास्त्रों के वर्णन से सामंजस्य नहीं होता। उनमें से कुछ की यहां फेहरिस्त दे देना मुनासिब होगा जिससे वे पाठकों की स्मृति में ताजा हो जायं।

१—जिस पृथ्वी पर हम आबाद हैं, उस पर प्रकाश देने वाले दो सूर्य बतलाना, जब कि एक ही सूर्य का होना प्रमाणित होता है।

२—पृथ्वी पर १८ मूहूर्त्त से बड़े दिन और रात का न होना बतलाना, जब कि २२।२३ मूहूर्त्त तक के रात-दिन तो जहां हम लोग रहते हैं, वहां हो रहे हैं, और तीन तीन छः छः महीना के अन्यत्र होते देखे जा रहे हैं।

३—सूर्य-ग्रहण का जघन्य अन्तर-काल ६ महीने से कम का न

ने शायद चन्द्रमा को अनन्त ज्ञान की दिव्यदृष्टि से न देख कर सादी आँखों से ही देखा होगा, जिससे चन्द्रमा का रूप विम्ब सूर्य से बड़ा दिखाई पड़ता है ।

१९—सूर्य विमान से चन्द्र विमान को ३२०००० (तीन लाख बीस हजार) मील ऊपर बताना जब कि इन दोनों में करोड़ों मील का फासला है और चन्द्रमा नीचा भी है ।

२०—सूर्य और चन्द्र ग्रहणों के लिये राहु के पिण्ड की कल्पना करना, जब कि राहु का कोई पिण्ड है ही नहीं ।

२१—पर्व राहु के विमान को, सूर्य विमान और चन्द्र विमान से ४ अंगुल नीचा बताना और [illegible] [illegible] और चन्द्र के विमान

केवल जैन शास्त्रों की ही ऐसी बातों के विषय में इस प्रकार प्रश्न मैं क्यों कर रहा हूँ इसका जरा खुलासा कर दूँ। क्या अन्य शास्त्रों में ऐसी बातें नहीं हैं? अवश्य हैं, और जैन शास्त्रों से कहीं अधिक हो सकती हैं, मगर समाज-हित के साधनों पर कुठाराघात करने वाले भावों के उत्पन्न होने की गुंजाइश जिस प्रकार जैन शास्त्रों से प्राप्त हुई है वैसी सम्भवतः अन्य किन्हीं शास्त्रों में हुई नजर नहीं आती। अन्य किसी भी शास्त्र के आधार पर सामाजिक मनुष्य को यह उपदेश नहीं मिल रहा है कि शिक्षा-प्रचार करने में पाप है—

इस लेख माला का उद्देश्य

'तरुण जैन' के गत मई से दिसम्बर, ४१ तक आठ महीनों के अंकों मे लगातार "शास्त्रों की वातें।" शीर्षक मेरे लेख निकल चुके हैं जिनमे जैन शास्त्रों मे वताई हुई खगोल-भूगोल सम्बन्धी कुछ वातों पर प्रकाश डालते हुए मैंने प्रश्नो के रूप मे सत्यासत्य जानने का प्रयास किया है। इन लेखो के विषय मे 'तरुण जैन' के सम्पादक महोदय के पास कुछ सज्जनो के पत्र आए जिनमे यह शिकायत थी कि लेखक जैन शास्त्रो पर आक्रमण कर रहा है। साथ ही यह अनुरोध भी था कि 'तरुण जैन' मे ऐसे लेखों को स्थान नहीं मिलना चाहिये। गत सितम्बर के अङ्क की सम्पादकीय टिप्पणी मे मेरे लेखों के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए सम्पादक महोदयो ने ऐसे सज्जनो को वहुत सुन्दर और यथार्थ उत्तर दे दिया है। मुझे इस विषय मे कहने की कुछ आवश्यकता नहीं रही। गत लेखों मे मैंने यह कहा है कि जैन शास्त्रो मे भी अन्य शास्त्रो की तरह अनेक वातें ऐसी लिखी हुई नजर आ रही हैं जिन्हें हम असत्य, अस्वाभाविक और असम्भव अनुभव कर रहे हैं। गत लेखों मे असत्य प्रतीत होने वाली वातो की एक सूची मैंने पिछले दिसम्बर के अंक मे दे दी है। जैन शास्त्रों के ज्ञाता और विद्वान लोगो से मेरा विनम्र अनुरोध है कि उस सूची की प्रत्येक वात का वे सन्तोषजनक समाधान करें।

केवल जैन शास्त्रों की ही ऐसी बातों के विषय में इस प्रकार प्रश्न में क्यों कर रहा हूं इसका जरा खुलासा कर दूं। क्या अन्य शास्त्रों में ऐसी बातें नहीं हैं? अवश्य हैं, और जैन शास्त्रों से कहीं अधिक हो सकती हैं, मगर समाज-हित के साधनों पर कुठाराघात करने वाले भावों के उत्पन्न होने की गुंजाइश जिस प्रकार जैन शास्त्रों से प्राप्त हुई है, वैसी सम्भवतः अन्य किन्हीं शास्त्रों से हुई नजर नहीं आती। अन्य किसी भी शास्त्र के आधार पर सामाजिक मनुष्य को यह उपदेश नहीं मिल रहा है कि शिक्षा-प्रचार करने में पाप है—भूख-प्यास से तड़फ कर मरते मनुष्य को अन्न-पानी की सहायता करने में पाप है—दुःखी-गरीब, अनाथ, अपंग की सहायता और रक्षा करने में पाप है—अस्वस्थ माता, पिता, पति आदि की सेवा-सुश्रूषा करने में पाप है—यानी सामाजिक जीवन में सुविधाएं एवं उन्नति करने वाले जितने भी सुकार्य हैं, सब पाप ही पाप हैं। सद्गृहस्थ के यदि धर्म है तो केवल सामायिक, प्रतिक्रमण करने, व्रत-प्रत्याख्यान करने, उपवास-तपस्या करने और साधु-सन्तों की सेवा-भक्ति करने में है। इसके अलावा गृहस्थ चाहे समाज-हित के और परोपकारी कार्य स्वार्थ रहित होकर भी करे, सब एकान्त पाप और अधर्म है।— ऐसे उपदेशों का यह असर होना स्वाभाविक ही है कि बहुत लोगों की परोपकार

की भावना लुप्त हो गई। मनुष्य स्वभाव से ही लोभी और स्वार्थी होता है। फिर उसको मिले ऐसे धर्मोपदेश जिनमे उसे धर्म-उपार्जन करने मे स्वार्थ का किञ्चित भी त्याग करने की आवश्यकता नहीं। फलतः ऐसे उपदेशों का क्या असर हो सकता है, पाठक स्वयं विचार ले। सामाजिक प्राणी के लिये ऐसे उपदेशों के अक्षर अक्षर सत्य मान लेने के नतीजे पर विचार करके मेरे हृदय मे यह भावना उत्पन्न हुई कि सर्वज्ञों ने समाजहित के ऐसे परोपकारी कार्यों को क्या वास्तव में ही एकान्त पाप और अधर्म बताया है? जरा शास्त्रो के रहस्य को देखना तो चाहिये। इसी विचार से शास्त्रो का अवलोकन करना प्रारम्भ किया तो कई बातें ऐसी देखने मे आईं जिन्हे सर्वज्ञ तो क्या पर अल्पज्ञ भी अपने मुंह से कहने में अपने आपको असत्य-भाषी महसूस करने लगेंगे। ऐसी बातों को देख कर यह विचार हुआ कि सर्वज्ञ कहलाने वालो के ऐसे असत्य वचन होने नहीं चाहिये, अत परीक्षा के नाते इन शास्त्रों के ऐसे स्थलों को देखना चाहिये जिन्हे हम प्रत्यक्ष की कसौटी पर कस सकें। प्रत्यक्ष की कसौटी पर कसने के लिये भूगोल-खगोल और वे विषय जिनका गणित से खास सम्बन्ध है, मुझे सर्वथा उपयुक्त प्रतीत हुए। मैंने इन विषयों पर देख-भाल करना प्रारम्भ किया जिसका परिणाम इन लेखों के रूप मे आपके समक्ष उपस्थित हो ही रहा है और होता रहेगा।

शास्त्रों की इस देखा-भाली में कई स्थल ऐसे देखने में आये जिनसे यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि प्रत्येक मजहब वालों ने एक दूसरे के प्रति साधारण जनता में द्वेष फैलाने का निकृष्ट प्रयास करने में भी संकोच नहीं किया है। सनातन धर्म के श्री भागवत महापुराण के पञ्चम स्कन्ध में जैनधर्म के प्रति अनेक स्थलों में जहर उगला गया है और जैन शास्त्रों के कई सूत्र-ग्रन्थों में अनेक स्थलों में सनातन धर्म के प्रति जहर उगला गया है। साथ ही अपने अपने धर्म-ग्रन्थों के अक्षर अक्षर की सत्यता की दुहाई देने में किसी ने भी कमी नहीं रखी है। एक कहता है कि हमारे धर्म-ग्रंथ तो अपौरुषेय हैं यानी मनुष्य के रचे हुए ही नहीं हैं, खास ईश्वर के श्री वचन हैं, तो दूसरा कहता है हमारे शास्त्रों में भगवान महावीर सर्वदर्शी खुद के श्रीमुख से निकले हुए वचन हैं। बिचारी भोली जनता साहित्यिक शब्दाडम्बर की सुगन्धित मादक धारा के बहाव में पड कर इस अक्षर अक्षर सत्यता के भंवर में फंस जाती है और अपने हिताहित को भूल कर एक दूसरे (मजहब वालों) से द्वेष करने लगती है जिसका बुरा परिणाम हम सामाजिक क्षेत्र में पग पग पर देख रहे हैं। जैन शास्त्र नन्दी-सूत्र में सत्य सत्य शास्त्रों की नामावली सुन लेने के पश्चात् श्री गौतम स्वामी ने भगवान से प्रश्न किया कि हे भगवान, मिथ्या शास्त्र कौन कौन से हैं तो श्री भगवान ने फरमाया कि हे गौतम, मिथ्या दृष्टि, अज्ञानी, स्वच्छन्द बुद्धि वाले मिथ्या

पुरुषों द्वारा रचे मिथ्या शास्त्र यह हैं—चार वेद छः अङ्ग (शिक्षा कल्प, ज्योतिष, निरुक्त, छन्द, व्याकरण) सहित, पुराण, भागवत, रामायण, महाभारत, वैशेषिकादि दर्शन, पातञ्जल (योग दर्शन), कौटिल्य (अर्थ शास्त्र), बुद्ध वचन, व्याकरण, गणित आदि इस प्रकार मिथ्या शास्त्रो के अनेक नाम बतलाये है। इसी प्रकार अनुयोगद्वार-सूत्र, समवायाग-सूत्र मे दूसरे के शास्त्रों को मिथ्याशास्त्र बतलाये है। विचारना यह है कि अन्यों के शास्त्रों को मिथ्या बताते हुए तो उनकी व्याकरण और गणित (जिनका मिथ्या और सत्य क्या बतलाना, यह तो भाषा और गणना के केवल नियम बतलाने वाले ग्रंथ हैं) तक को मिथ्या बताने में सर्वज्ञों ने संकोच नहीं किया। और अपनी खुद का साधारण गणित करने मे—सही सही बताने मे भी अनेक स्थलों मे असमर्थ रह गये। इन शास्त्रों मे अनेक स्थानों में गणित की गलतियाँ देखने मे आ रही है। प्रत्येक जगह जहाँ जैन शास्त्रो मे किसी वस्तु का आकार गोल बता कर उसका व्यास बताया है और फिर उस व्यास की परिधि बताई है, वे सब की सब परिधियाँ असत्य और गलत है। उदाहरण के तौर पर जम्बूद्वीप को गोलब ताकर उसका व्यास १००००० योजन और परिधि ३१६२२७ योजन ३ कोस १२८ धनुष्य १३½ अङ्गुल १ यव १ युक १ लिख ६ बालाग्र (बाल का अग्र भाग) ५ व्यवहारिये प्रमाणु की बताई है जो सर्वथा असत्य और गलत है। छोटी छोटी कक्षा के विद्यार्थी भी

जानते हैं कि १००००० योजन के व्यास के गोल चक्कर की परिधि ३१४१५९[illegible] योजन होगी। स्थूल हिसाब से एक गोलाई के व्यास की परिधि २२/७ या ३ १/७ गुना होती है और भारतीय उच्च गणित-ग्रंथ लीलावती के अनुसार सूक्ष्म परिधि ३·१४१६० और वर्तमान सूक्ष्म गणित (जहाँ तक कि मैंने देखा है) के अनुसार ३·१४१५९२६५ गुना होती है। यही गुर (Formula) विज्ञान और इञ्जिनियरिङ्ग में काम में लाया जाता है और इतना सही है कि परीक्षा में सम्पूर्ण सत्य उतरता है। जैन शास्त्रों में जम्बूद्वीप की गोलाई पूर्णिमा के गोल चन्द्र के सदृश्य बताकर एक लाख योजन के व्यास की परिधि बताने में सर्वज्ञों ने सूक्ष्मता का तो सत्यानाश कर दिया है। युक (जूं), लिख, बालाग्र और व्यवहारिक परमाणुओं तक को घसीट लिया गया और योजना की सत्यता में मारा ही घाटा। जम्बूद्वीप की परिधि बताने में सूक्ष्म अन्तर को तो दरकिनार रखिये, यहां तो २०६८ योजन यानी ८२७२००० माइल का बहुत बड़ा अन्तर पड़ रहा है। लोक आकाश के घनफल बताने की असत्यता के बाबत 'तरुण' के गत अङ्क में श्री मूलचन्दजी वैद (लाडनूं) के लेख में देखा ही जा चुका है कि शास्त्रों में लोक आकाश का जो आकार बताया है उसके अनुसार इनके द्वारा बताया हुआ ३४३ का घनफल किसी प्रकार से भी प्रमाणित नहीं हो सकता *। पाठकवृन्द, यह है

---

*उक्त लेख 'लोक के कथित माप का परीक्षण' शीर्षक से इस पुस्तक के परिशिष्ट में छपा है।

गणित मे अक्षर अक्षर सत्यता का नमूना। लोग अब इस बात को तो स्वीकार करने लग गये है कि दर असल ही खगोल-भूगोल की बातों के बाबत जैन शास्त्रों मे जो वर्णन है, वह सत्य साबित नहीं होता, मगर और सब बातो की अक्षर अक्षर सत्यता पर अब भी उनका अंधविश्वास बना हुआ है। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि या तो धर्मजीवी लोगों ने अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिये जान बूझ कर लोगो को मुगालते (भ्रम) मे डाल रखा है या उन्होने खुद शास्त्रों के वचनों को कसौटी पर कसने का कष्ट नहीं उठाया। वरना जो गलतियाँ और असत्य बाते देखने मे आ रही है, वे इनसे छिपी नहीं रहनी चाहिये थीं। भूगोल-खगोल के सम्बन्ध मे लोगों के दिमाग मे यह बात खामख्वा जमा दी गई है कि जो शास्त्र विच्छेद गये, उनमे इन सब बातो का सही सही वर्णन था। वर्तमान जैन सूत्रों मे खगोल-भूगोल का कुछ भी वर्णन नहीं होता तो हम इस कथन को स्वीकार करके भी संतोष कर लेते, मगर शास्त्रों को बाचने वाले अच्छी तरह से जानते हैं कि इन विषयों पर सूत्रो मे काफी लिखा हुआ है। सो भी अनेक स्थलों मे पड़ी वृतियों के साथ अन्यो के कथनो को लहजे के साथ मिथ्या बताते और खण्डन करते हुए। अक्षर अक्षर सत्य मानने वालों की तरफ से शास्त्र विच्छेद गये का कहना तो चल ही नहीं सकता। अब तो जो लिखा हुआ है उसीको सत्य साबित कर दिखाना अपने कर्तव्य को पालन

करना और जिम्मेवारी से रिहा पाना है। खैर, खगोल-भूगोल के विषय पर विवेचन करना हम छोड़ ही दें तो भी तो अनेक बातें ऐसी हैं जो प्रत्यक्ष में असत्य साबित हो रही हैं। परिधियों के असत्य होने को आप प्रस्तुत लेख में अच्छी तरह देख ही चुके हैं और इसी तरह अन्य बातों को भविष्य में क्रमश देखते रहेंगे। सर्वज्ञ के वचनों में जहां रञ्च मात्र भी असत्य होने की गुंजाइश नहीं अक्षर अक्षर पर सत्यता की मोहर लगाई हुई है वहां अगर इस प्रकार प्रत्यक्ष में असत्य साबित होने वाले प्रसंग सामने आ रहे हैं तो ऐसे वचनों को बिना विचारे और सोच कर सत्य मानने वाले तो भले ही मान लें पर विचार-वालों का तो यह संशय हो जाता है कि जो विधि और निषेध मनुष्य-जीवन के लिये परम शान्ति के हमारे शास्त्र बतला रहे हैं, वह वास्तव में हित के हैं या नहीं—इसका विचार कर अमल में लावें। ऐसा नहीं कि शास्त्रों में कह दिया कि हर हालत में भूख-प्यास से दुःखी को प्राण देने में धर्म है तो धर्म ही मान बैठें और भूख प्यास से मरते को बचाने की सहायता करने में अधर्म है तो अधर्म ही मान बैठें।

'तरुण जैन' फरवरी सन् १९४२ ई०

गणित सम्बन्धी भूलें

गत जनवरी के लेख मे मैने कहा था कि प्रत्येक जगह जहा जैन शास्त्रों मे किसी वस्तु का आकार गोल बताकर उसका व्यास बताया है और फिर उस व्यास की जो परिधि बताई है, वह सब की सब परिधिया असत्य और गलत है। सूर्य-प्रज्ञप्ति, चन्द्र-प्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति और जीवाभिगम—इन चार सूत्र ग्रन्थों मे प्राय: सैकडों जगह गोलाई के व्यास बता कर उनकी परिधिया बताई है जो सब की सब असत्य और गलत हैं। इनमे से करीब ५६० परिधियो की मैंने गणित करके जाच की तो सब की सब असत्य उतरी। इसके पश्चात् तो परिधि निकालने का गुर:(Formula) मिल गया जो खुद ही असत्य है। तब यह निश्चय हो गया कि जिस किसी भी सूत्र ग्रन्थ मे जहा कहीं भी गोलाई का व्यास बता कर परिधि बताई हुई मिले, वह सर्वथा असत्य होगी। मैने सोचा कि जाची हुई इन असत्य परिधियों का एक चार्ट बना कर इस लेख में दे दू, मगर लेख बड़ा हो जाने के खयाल से चार्ट न देकर मैं यही अनुरोध करूंगा कि जिनको इन परिधियो की सत्यता पर विश्वास हो, वे कृपा करके एक दफा वर्तमान गणित द्वारा जाच कर देख लें। आज इस विज्ञान-युग मे जब कि गणित का सूक्ष्मातिसूक्ष्म

विकास हो चुका है, साधारण-सी गणित में इस प्रकार की गलतियों का पाया जाना बड़ी दयनीय अवस्था की बात है। गणित-ग्रन्थ लीलावती के देखने से अनुमान होता है कि भास्कराचार्य के जमाने तक भी गणित का काफी सूक्ष्म ज्ञान हो चुका था मगर जैन शास्त्रकारों का गणित विषयक ज्ञान देख कर तो आश्चर्य होता है कि ऐसी गणित करने वालों के साथ सर्वज्ञता के शब्द का सम्बन्ध किस आधार पर स्थापित किया गया। गणित एक ऐसा विषय है जिसमें किसी की ढीठाई और दुराग्रह नहीं चल सकता प्रश्न की सच्ची फ़रायट होने पर आखिर तो सही सही उत्तर प्राप्त होगा। मुनि श्री अमोलक ऋषि जी महाराज के भाषानुवाद कृत दक्षिण हैदराबाद वाले सूर्य-प्रज्ञप्ति के पृष्ठ ४८ में एक स्थान पर ९९६४० योजन लम्बे चौड़े व्यास की बताई हुई परिधि में एक मजे की बात देखने में आई।

निकाल लो, वही परिधि होगी। यह गुर किस गुरु से प्राप्त किया, यह तो सर्वज्ञ ही जानें, बाकी practically परीक्षा करने पर यह गुर सर्वथा असत्य प्रमाणित होता है। जिस गणित का गुर ही झूठा हो, वहा सच्चे उत्तर का मिलना असम्भव से भी असम्भव है। इस प्रकार गणित के अधूरे ज्ञान पर सर्वज्ञता की मोहर लगाना सर्वज्ञता के शब्द का कितना बडा उपहास है, पाठक स्वयम् विचार लें। जैन शास्त्रो की गणित में केवल परिधिया ही असत्य है, सो बात नहीं है। इनके तो क्षेत्रफल बताने मे भी ऐसा ही हुआ है। एक लाख योजन के लम्बे-चौडे गोलाकार जम्बूद्वीप का क्षेत्रफल बताते हुए सर्वज्ञों ने कहा है कि जम्बूद्वीप के एक एक योजन के समचोरस खण्ड किये जायें तो ७९०५६९४१५० खण्ड होकर ३५१५ धनुष्य ६० अंगुल क्षेत्र बाकी रह जायगा। यह कथन सर्वथा असत्य और गलत है। वर्तमान गणित के हिसाब से एक लाख योजन लम्बे-चौडे व्यासवाले गोलाकार क्षेत्र के यदि एक एक योजन के समचोरस खण्ड किये जायें तो ७८५३९८१६२५ खण्ड होते हैं और यही इसका क्षेत्रफल है। यदि हम जन शास्त्रों के बताये हुए धनुष्यो और अंगुलो की सूक्ष्मता को किनारे रख दें तो भी ७९०५६९४१५० और ७८५-३९८१६२५ के दरमियान ५१७१२५२५ योजन यानी २०६८५०-१००००० माइल का बहुत बडा अन्तर पडता है जो सर्वज्ञता को असत्य सावित करने के लिये काफी है। पाठक वृन्द, किसी स्थान के क्षेत्रफल निकालने मे जहा २½ खरब माइल से भी

अधिक बड़ा अन्तर पड़ रहा हो उस पर अक्षर अक्षर सत्यता की मोहर लगाना और सर्वज्ञता का दावा पेश करना कहाँ तक युक्तिसङ्गत है, इसके प्रमाणित करने की जिम्मेवारी तो दावा पेश करने वालों पर खड़ी है।

गत लेखों में खगोल और भूगोल के विषय की प्रत्यक्ष असत्य प्रमाणित होनेवाली २६ बातों को आप देख चुके हैं और जनवरी के अङ्क में जैन शास्त्रों में सैकड़ों जगह बताई हुई परिधियों के असत्य होने की बात मेरे लेख में और लाडनूँ के श्री मूलचन्दजी बैद के "लोक के कथित माप का परीक्षण" शीर्षक लेख से जैन शास्त्रों में बताये हुए लोक के आकार के अनुसार असत्य प्रमाणित होनेवाले ३४३ के घनफल को आप देख ही चुके हैं। इस पर भी यदि अक्षर अक्षर सत्यता का विश्वास कोई अपने दिमाग से न हटा सके, तो बलिहारी है उस दिमाग की। भारतीय दिमाग में मजहबी गुलामी का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। सदियों से चला हुआ यह गुलामी का रोग उतरते भी काफी समय लेगा। मजहबी गुलामी ने संसार में मानव समाजपर जो भीषण अत्याचार करवाये उसका इतिहास साक्षी है। सच्ची बात कहने वालों को सूली चढ़वाया, फाँसी दिलवाई, जिन्दे आधे जमीन में गड़वा कर पत्थरों से मरवाना आदि क्या क्या इस तरह की गुलामी ने नहीं करवाया? आज भी भारत की जो असहाय अवस्था हो रही है, वह एक मात्र मजहबी गुलामी का ही परिणाम है। अब भी मजहब के नाम पर

तीर्थ-यात्राओं, कुम्भादि मेलों, नये नये मन्दिरों के निर्माण और प्रतिष्ठाएं कराने, महाराजोंके चौमासे कराने आदि नाना तरह के मजहबी आडम्बरों मे और इन ६० लाख 'सन्तों' की निठल्ली फौज को बैठे बैठे खिलाने मे भूखे भारत के करोडो रुपये प्रति वर्ष नष्ट होते हैं। क्या भारत को शिक्षा के प्रचार, अनाथो के पोषण, बेकारों के लिये उद्योग, अशिक्षितों को शिक्षा दिलाने आदि नाना तरह के कामों के लिये द्रव्य की आवश्यकता नहीं है? मजहबी आडम्बरो के लिये तो सेठो की थैलियो के मुंह सर्वदा खुले रहते हैं मगर इन अभावों को रफा करने के लिये जब द्रव्य की आवश्यकता होती है तो सेठ लोग नाना तरह के बहाने ढूंढ़ने लगते हैं। बल्कि कुछ महापुरुष तो यहा तक कहने में भी नहीं हिचकिचाते कि इन सब कामो के करने मे सहायता देना एकान्त पाप और अधर्म है। इसका कारण ही एक मात्र यह है कि हमारे उपदेशक शास्त्रों की अक्षर अक्षर सत्यता की दुहाई पर मानव समाज को गुमराह कर रहे हैं। स्वर्ग और मोक्ष के लुभावने सुखों का लालच बता कर मजहबी आडम्बरों मे द्रव्य खच करने को आकर्षित करते रहते हैं। यही कारण है कि मजहबी आडम्बरों मे प्रति वर्ष करोडो रुपये फूंके जा रहे हैं। मगर सार्वजनिक लाभ के कामो के लिये बहाना बता दिया जाता है। मेरे एक मित्र, जो जैन श्वेताम्बर तेरापंथ सम्प्रदाय के मानने वाले है, मुझ से पूछने लगे कि "शास्त्रों की असत्य बातो को इस प्रकार लेखो [illegible] आप क्यो [illegible]?"

मैंने कहा—"इसका कारण तो मैं गत जनवरी के मेरे लेख में दे चुका हूं कि समाज-हित के साधनों पर कुठाराघात करने वाले भावों के उत्पन्न होने की गुंजाइश इन जैन शास्त्रों से ही प्राप्त हुई वरना संसार में ऐसा कोई मजहब नहीं है जिसके शास्त्रों से यह भाव उत्पन्न हुए हों कि सामाजिक मनुष्य को भी शिक्षा-प्रचार करने, भूख प्यासे तड़फ मरते को अन्न-पानी की सहायता करने, अनाथों की रक्षा करने, अस्वस्थ माता, पिता, पति की सेवा-सुश्रुषा करने आदि सत्कार्यों के करने में एकान्त पाप और अधर्म होता है।" मेरे मित्र कहने लगे कि "[illegible] महाराज तो ऐसा कहते नहीं। आपके मन्दिर पंथ के सिद्धान्तानुसार तो ऐसे समाज हित के सत्कार्यों में सहायक होना पुण्य-उपार्जन का हेतु कहा गया है।' मैंने कहा— इसीलिये तो 'ऐसे भावों के उत्पन्न होने की गुंजाइश' शब्दों का प्रयोग किया गया है वरना सब पंथ यदि एक-सा ही कहते तो साफ साफ यही कह दिया जा सकता कि समाज-हित के कामों को जैन शास्त्र एकान्त पाप और अधर्म बतला रहे हैं। मैंने कहा— यदि आप भी लोकोप-कारक कामों के करने में पुण्य-उपार्जन का हेतु कहते तो मेरे जैसे गृहस्थ व्यक्ति को इन शास्त्रों की बातों को परीक्षा पर चढ़ाने की सूझती भी नहीं।

व्यतीत करते हैं, वे हमारी श्रद्धा और आदर के भाजन हैं, चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय के हों। मैं यह मानता हू कि साधु अपने कल्प यानी अपनी संस्था के नियम के अनुसार अपने खुद के शरीर से समाज-हित के सत्कार्यों मे सहयोग न दे सके तो न दें, इसमे समाज का कुछ वनता विगडता नहीं, मगर सामाजिक मनुष्य को गलत मार्ग पर ले जाने वाले सिद्धान्तो का हमे विरोध अवश्य है। यदि इन शास्त्रो के वचन परीक्षा मे अक्षर अक्षर सत्य उतरते तो इनमे बताई हुई पुण्य और धर्म उपार्जन वाली प्रत्येक परोक्ष वात के लिये भी विश्वास पर ही चलना हमारा कर्तव्य था मगर यहा तो प्रत्यक्ष वातों मे भी सत्य कोसों दूर है। इसके अलावा हम ऐक ही शास्त्रो को मानते हुए एक सम्प्रदाय लोकोपकारक सत्कार्यों को करने मे धर्म कह रहा है तो दूसरा सम्प्रदाय एकान्त पाप और अधर्म कह रहा है। हम किसकी सूझ पर भरोसा करें।" मेरे मित्र कहने लगे-"ऐसी दस-बीस वातें परीक्षा मे असत्य उतर रही हैं तो क्या हुआ? और हजारों वातें तो शास्त्रों मे सत्य हैं।" मैने कहा "यह आप को किसने कहा कि दस बीस बातें ही परीक्षा मे असत्य उतर रही है और हजारों वातें सत्य हैं।" वे कहने लगे कि "हमारे सन्त मुनिराज ऐसा फरमा रहे हैं।" मैंने कहा-"फरमाने वाले भूल कर रहे हैं"। शास्त्रों की अवस्था ठीक उनके फरमाने से विपरीत है। यदि कोई मिथ्या विवाद न करे तो मैं यह प्रमाणित कर सकता हूं कि शास्त्रो मे हजारों वातें ऐसी है जो मेरे

बताये हुए असत्य, अस्वाभाविक और असम्भव की श्रेणी में प्रयुक्त होगी। अभी तक तो जैन शास्त्रों की केवल प्रत्यक्ष में असत्य प्रमाणित होने वाली बातों में से ही थोडी सी मैंने लिखीं है। लगातार यदि ऐसी असत्य प्रमाणित होने वाली बातें ही लेखों द्वारा लिखी जायें तो बरसों लिखी जा सकती है। अस्वाभाविक और असम्भव प्रतीत होने वाली बातों का तो अभी तक स्पर्श ही नहीं किया गया है"। एक दूसरे मित्र जो इन शास्त्रों की असत्य बातों को अब हृदय से असत्य समझने लगे हैं यानी जो सम्यक्त्व को प्राप्त हो गये है, मुझसे कहने लगे—कुछ लेख अब असम्भव और अस्वाभाविक बातों के भी देना चाहिये वरना बरसो तक इनकी बारी ही नहीं आवेगी। उन मित्र की युक्ति मेरे भी जची। इसलिये भविष्य में केवल असत्य प्रमाणित होने वाली बातों पर ही लगातार न लिख कर कभी असत्य कभी अस्वाभाविक और कभी असम्भव बातों पर लिखा करूंगा।

'तरुण जैन' मार्च सन १९४२ ई०

असत्य, अस्वाभाविक और असम्भव

गत जनवरी और फरवरी के मेरे लेखों से यह प्रमाणित हो चुका है कि जैन शास्त्रो मे सैकडों जगह बताया हुआ गणित सर्वथा असत्य और गलत है। गोलाई के व्यास की परिधि और क्षेत्रफल बताने मे जहा इस प्रकार सर्वज्ञता के नाम पर अल्पज्ञता का स्पष्ट परिचय मिल रहा है और उन्हीं शास्त्रो की अक्षर अक्षर सत्यता की दुहाई पर सामाजिक मनुष्य के लिये यह उपदेश मिल रहा है कि शिक्षा प्रचार करना, भूखे प्यासे को अन्न-पानी की सहायता करना, माता, पिता, पति आदि की सेवा सुश्रूषा करना अधर्म है यानी सामाजिक जीवन को सुखी एवं उन्नत बनाने वाले जितने भी साधन है, सब एकान्त पाप और अधर्म है, तो जिस मनुष्य के दिमाग मे किञ्चित भी सोचने की शक्ति है वह यह सोचे बिना नहीं रह सकता कि शास्त्रों के ऐसे वचनों को हम किस सत्यता के आधार पर अक्षर अक्षर सत्य मान रहे है? अब तक मैंने 'तरुण' मे जितने लेख दिये, वे सब प्रश्नों के रूप मे थे। मेरी भावना यह थी कि हमारे शास्त्रज्ञ, जिनका व्यवसाय (Profession) केवल इन शास्त्रों की अक्षर अक्षर सत्यता पर टिका हुआ है, शास्त्रों के असत्य प्रतीत होने वाले वचनों को सत्य साबित कर

दिखाने के लिये क्या प्रयत्न करते हैं? परन्तु अभी तक किसी ने भी मेरे प्रश्नोंके समाधान करने का प्रयास तक नहीं किया। मुझे अब यह विश्वास हो गया है कि जैन शास्त्रों की असत्य, अस्वाभाविक और असम्भव प्रतीत होनेवाली बातों के समाधान करने का किसी का भी साहस नहीं हो सकता। कारण, यह बात वास्तवमें ही ऐसी है। अब मैं यह चुनौती देता हूं कि कोई सज्जन शास्त्रों की इन बातों का समाधान कर दिखावें।

३७७३ श्वासोश्वास	१ मुहूर्त
३० मुहूर्त	१ अहोरात्रि
१५ अहोरात्रि	१ पक्ष
२ पक्ष	१ मास
२ मास	१ ऋतु
३ ऋतु	१ अयन
२ अयन	१ सम्वत्सर
५ सम्वत्सर	१ युग
२० युग	१ शतवर्ष
८४००००० वर्ष	१ पूर्वांग
,, पूर्वांग	१ पूर्व
,, पूर्व	१ त्रुटितांग
,, त्रुटितांग	१ त्रुटित
,, त्रुटित	१ अडडांग
,, अडडांग	१ अडड
,, अडड	१ अववांग
,, अववांग	१ अवव
,, अवव	१ हुहुतांग
,, हुहुतांग	१ हुहुत
,, हुहुत	१ उत्पलांग
,, उत्पलांग	१ उत्पल
,, उत्पल	१ पद्मांग

कायिल हैं। सब से पहिले जहा एक मुहूर्त मे ३७७३ श्वासोश्वास बताया है, वह असत्य प्रतीत होता है। शास्त्र मे बताया है कि "यह ३७७३ श्वासोश्वास हृष्ट-पुष्ट बलवंत रोग रहित पुरुष के जानना"। एक मुहूर्त के ४८ मिनिट माने गये हैं। वर्तमान समय में एक हृष्ट-पुष्ट रोग रहित मनुष्य के एक मिनिट मे १५ श्वासोश्वास माने जाते है। इस हिसाब से एक मुहूर्त यानी ४८ मिनिट मे ७२० श्वासोश्वास हुए। इसलिये ३७७३ श्वासोश्वास का बताना असत्य प्रतीत होता है। यदि कोई कहे कि जिस समय शास्त्रों मे कहा गया था, उस समय शायद मनुष्य के श्वासोश्वास की गति तेज होगी और एक मुहूर्त मे ३७७३श्वासोश्वास होते होंगे। परन्तु यह कयाश ठीक नहीं हो सकता। कारण, यह माना गया है कि बालक और वृद्ध, जिनकी कि बमुकाबिले हृष्ट-पुष्ट जवान के शक्ति कम होती है, के श्वासोश्वास की गति अधिक होती है। यह भी मानी हुई बात है कि वर्तमान समय के मनुष्यों से भगवान महावीर के समय के मनुष्यों में शक्ति अधिक थी। इसलिये उनके श्वासोश्वास की गति अधिक कदापि नहीं होनी चाहिये। फिर श्वासोश्वास की यह उलटी दशा कैसे बताई? क्या अन्य बातों की तरह श्वासोश्वास भी बढा कर पंचगुने बताये गये हैं? इन आकडों मे दूसरा स्थान विचार करने का है—चौरासी लाख पूर्व का एक त्रुटितांग बताना। भगवान ऋषभदेव स्वामी की आयु जैन शास्त्रों मे सब जगह चौरासी लाख पूर्व की

बताई गई है जिसको हम ४९७६०४००००००००००००००० वर्ष को भी कह सकते हैं और सुविधा से बोलने के लिये एक त्रुटितांग को भी कह सकते हैं। व्यावहारिक ज्ञान से एक त्रुटितांग ही कहना मुनासिब समझना चाहिये, कारण जैसे राम ने श्याम को दस रुपये दिये तो व्यावहारिक भाषा में राम यह नहीं कहेगा मैंने श्याम को ६४० पैसे दिये या १९२० पाई दी। यदि ऐसा कहेगा तो बेवकूफ कहलायेगा। इसी न्याय से जैन शास्त्रकारों को भी भगवान ऋषभदेव की आयु एक त्रुटितांग की कहनी चाहिये थी मगर शास्त्रों में सब जगह चौरासी लाख पूर्व की ही कथन है।

चौरासी लाख गुना अधिक बताते हुये उनके नाम करणकीर चना और ऐसी असम्भव कल्पना का करना। त्रुटिताग, त्रुटित-अडडांग, अडड-अववाग, अववहुहुतांग, हुहुत आदि ऐसे निरर्थक और ऊटपटाग शब्द हैं जिनका कोई अर्थ भी नहीं निकलता और सुनने मे भी खिलवाड़-सा मालूम देता है। चौरासी लाख की संख्या को बराबर २८ दफा गुना कर के ऊटपटाग नामों के साथ अङ्कों की संख्या १९४ तक बढाई गई है। हम जैनी लोग बड़े गर्व के साथ कहा करते हैं कि जैन शास्त्रो की संख्या की नामावली का क्या कहना? अन्य सबो की संख्या की नामावली के नाम तो १९ अङ्को तक ही समाप्त हैं मगर हमारी संख्या के नाम १९४ अङ्क तक है। जैन श्वेताम्बर फिरक की भिन्न भिन्न सम्प्रदायो के तीन-चार विद्वान सन्तमुनि-राजों से मैंने पूछा कि "महाराज, इस त्रुटितांग से लगाकर शीर्ष प्रहेलित तक की संख्या के सब नामो का जैन शास्त्रो मे क्या आपने कहीं व्यवहार (use) होता हुआ देखा है?" तो सब ने यही कहा कि हमने तो कहीं नहीं देखा। त्रुटितांग से शीर्ष-प्रहेलित तक की संख्या का जब कहीं व्यवहार ही नहीं हुआ है तो १९४ अङ्कों का गर्व करने और बडाई बघारने का मूल्य ही क्या है? हम इस बार बार २८ बार गुना होनेवाली चौरासी लाख की संख्या को ककखा-कखख, गगघा-गगघ, चचछा-चचछ की तरह ऊटपटांग शब्दो से सैकड़ो हजारो नाम रचकर संख्या बना दें तो चौरासी लाख से बार बार गुना होकर संख्या के

अङ्क बढ़ कर करोड़ों-अरबों हो जायेंगे। विचारे १९४ अङ्कों की हस्ती ही क्या है? फिर जितना गर्व करना हो करते रहें। पाठक वृन्द, यह है हमारे १९४ अङ्कों के गर्व का नमूना जिस में अङ्कों की गणना दिखाने में सर्वज्ञता का परिचय दिया गया है।

जैन शास्त्रों के विषय में मेरे लेख गत मई से लगातार 'तरुण' में निकल रहे हैं जिन से शायद आपने यह अनुमान लगाया होगा कि लेखक जैनी होते हुये भी जैन शास्त्रों का विरोधी प्रतीत होता है कारण आपकी नजर में अब तक केवल कटु समालोचना ही आई है मगर मैं आप को विश्वास दिलाता हूँ कि आगे चलकर शास्त्रों की बातों के [illegible] भी [illegible] कि जैन शास्त्रों में मनुष्य-जीवन के [illegible] के जो सुन्दर सुन्दर सिद्धान्त हैं, वे भी [illegible]। आपको यह मालूम रहना चाहिये कि लेखक [illegible]।

विचार धारा को और मानवहित के तत्वों को समझते है। अपने अपने जोम मे तने हुए अपनी अपनी सम्प्रदाय के भोले प्राणियो मे न-कुछ न-कुछ बातों पर एक दूसरी सम्प्रदाय के प्रति द्वेष फैलाते रहते हैं जिसके बुरे परिणाम स्वरूप जैनत्व का प्रति दिन ह्रास हो रहा है। उचित तो यह है कि अब न-कुछ बातों पर टुकड़े २ न रह कर जैन कहलाने वाले, बडे पैमाने पर सब एक हो कर जैनत्व को बचा लें।

एक 'थली-वासी' का पत्र

मान्यवर सम्पादक महोदय,

मैं यह पत्र आपकी सेवामे पहिले-पहल ही प्रेषित कर रहा हू। सब से पहिले मै आप को मेरा कुछ परिचय दे दूं। मैं थली प्रान्त के एक बडे शहर का रहनेवाला और दस्से-बीसे से भी बढ कर पचीसा-तीसा ओसवाल हू। शायद अन्य लोगों की तरह आप भी पूछ बैठें कि मैं किस मजहब को माननेवाला हू? पहिले ही कह दूं कि मैं इस वक्त जैन श्वेताम्बर पौने-तेरापंथी हू। आप शायद इसको मजाक समझेंगे, मगर मैं आप से कसमिया कहता हू कि आपके 'तरुण' ने और खास करके आपके दो लेखकों ने मेरा पाव पंथ घिस डाला। आप समझ गये होंगे—

पूज्यजी महाराज भी पढते हैं। वातावरण मे कुछ हलचल-सी मच जाती है। उस दिन मेरे सामने ही 'तरुण' की बातें चल रही थीं। एक अनन्य और विश्वासपात्र श्रावक अर्ज कर रहे थे कि महाराज, आप शिक्षा-प्रचार में पाप बता रहे हैं मगर शिक्षा का सम्बंध अब आजीविका से जुडा हुआ है। केवल आपके पाप बताने से लोग पढ़ने से रुक नहीं जायंगे। लोग जैसे जैसे शिक्षित होगे, उनमे तर्क और ज्ञान बढेगा। ज्ञान बढ़ने से प्रत्यक्ष और गणित से असत्य साबित होनेवाली बातों की अक्षर अक्षर सत्यता की मोहर (छाप) टूटे बगैर कैसे रहेगी? महाराज ने गम्भीर होकर उत्तर दिया कि 'यह विचारने की बात हो रही है।' सम्पादकजी, मुझे तो अब कुछ न कुछ समाज-सुधार की तरफ रवैया बदलता प्रतीत हो रहा है—चाहे उपदेश की शैली बदल कर, चाहे श्रावकों द्वारा समाज-सुधार के लिये कोई संघ या सभा कायम होकर। और अब भी कुछ न हो तो महान् विनाश निकट ही है। पर मुझे विश्वास होने लगा है कि आप के 'तरुण' की उछल-कूद खाली नहीं जाने की।

कुछ दिन पहिले मैं कार्य वशात् सुजानगढ गया था। सिंघीजी से भी मिला। बड़े सज्जन प्रतीत होते थे। मैंने कहा 'आपके 'तरुण' के लेखोंमे शास्त्रों की बातों को असत्य प्रमाणित करने की सामग्री तो लाजवाब है, मगर आप सर्वज्ञता के शब्द के साथ कहीं कहीं मजाक से पेश आ रहे हैं। यह बात मेरे हृदय मे खटकती है।" वे कहने लगे—क्या आप यह

स्वीकार करते हैं कि सर्वज्ञों की बात प्रत्यक्ष में असत्य हो सकती है। यदि नहीं तो ऐसी बातों के कहने वालों को आप सर्वज्ञ समझें ही क्यों ? सर्वज्ञ सत्य के कहनेवाले ही होंगे, और उनके साथ मजाक करने की मजाल ही किस की है ?" फिर वे कहने लगे "मैंने ऐसा सोच समझ कर ही किया है कारण, यदि मैं दूसरी शैली से लिखता तो इन लेखोंको रुचि से कोई पढ़ता तक नहीं। एक तो शास्त्रों का विषय ही शुष्क ठहरा और दूसरे उपदेशकों ने अपनी 'सन्तवाणी' द्वारा सैकड़ों वर्षों के लगातार प्रयत्न से लोगों को शास्त्रों के अन्धभक्त बना दिये हैं। इसलिये बिना चुभनेवाले शब्दों से मुझे असर होता नहीं दीखा।" सिंघीजी की बात कुछ मेरे भी जंची। [illegible] तो हो ही गये हैं [illegible] कभी कुछ पूछना हो तो मुझसे पूछ लिया कर। [illegible] संकोच न कर। मेरा हृदय विशाल है, मैं [illegible]। समय समय पर मैं स्वयं भी आप को यहाँ की [illegible] से वाकिफ करता रहूँगा।

[illegible],

[illegible]

कल्पना की दौड़

'तरुण जैन' में मेरे लेखों का इस अङ्क से पहिला वर्ष समाप्त होता है। मुझे यह आशा थी कि जैन कहलाने वाले विद्वान एवं शास्त्रज्ञों द्वारा मेरे प्रश्नों का समुचित समाधान प्राप्त होगा मगर खेद एवं आश्चर्य है कि अभी तक किसी ने किसी तरह का भी समाधान करने का प्रयास नहीं किया। मै इस बात को तो मान ही नहीं सकता कि मेरे लेखों को किसी विद्वान और शास्त्रों के जानने वाले ने पढा तक न हो। 'तरुण' की ग्राहक-संख्या चाहे कम हो परन्तु पढने वालो की संख्या अवश्य हजारो की है। अतः विचारशील व्यक्ति को मजबूरन इस नतीजे पर पहुचना पडता है कि वास्तव मे शास्त्रो की अक्षर अक्षर सत्यता का कथन स्वीकार करना अन्धश्रद्धा और अज्ञान के सिवाय कुछ तथ्य नहीं रखता। मै यह नहीं कहता कि शास्त्रो मे लिखी हुई सब ही बातों को असत्य और मिथ्या मान लिया जाय। मेरा कहना तो यह है कि असत्य को अवश्य असत्य माना जाय। शास्त्रों की अन्धश्रद्धा के कारण यदि कोई प्रत्यक्ष असत्य को असत्य नहीं मान सकता तो वह भगवान के वचनो के अनुसार सम्यक्त्ववान कहलाने का अधिकारी नहीं है। जिन शास्त्रों मे इस प्रकार प्रत्यक्ष असत्य, अस्वाभाविक और असम्भव बातें मौजूद है, उनकी अक्षर अक्षर सत्यता के आधार पर सामाजिक व्यक्ति को शिक्षा-प्रचार, पारस्परिक सहयोग और सहायता आदि सत्कार्य, जिन पर कि मानव-समाज का अस्तित्व टिका हुआ है, के करने मे यदि एकान्त पाप और अधर्म बताया जाय तो समाज के मानस पर इसका कैसा दुष्परिणाम हो सकता है यह विचारने का विषय है। जैन कहलाने वालों की इस समय दो मुख्य सम्प्रदायें है। श्वेताम्बर

तीनों सम्प्रदायों के विज्ञ सन्त मुनिराज मनुष्य-जीवन के उत्कर्ष के लिये भिन्न भिन्न तरह से और परस्पर विरोधी कर्तव्य और धर्म बतला रहे हैं। इसलिये जैन कहलाने वाले सब सम्प्रदायों के शास्त्रज्ञों, संयमी एव विज्ञ मुनिराजों और जन-समुदाय के विचारशील व्यक्तियों से मेरा विनम्र अनुरोध है कि शास्त्रों के शब्दों के आधार पर जो खींचातानी और विरोध खडा हुआ है उसे छोड कर हम सब जैनी एक सूत्र मे बंध जायें और एक महती सभा का आयोजन करके मानव-जीवन के हितों का एकसा मार्ग स्थिर करलें। छोटी छोटी नगण्य नुक्ताचीनी पर बाल की खाल खींचने के स्वभाव को त्याग कर उदारता पूर्वक सब मिलकर एक हो जायें। बादशाह अकबर के समय में (लगभग ३०० वर्ष पहिले) जिन जैनियों की संख्या करोडों पर थी, आज उसका क्या हाल हो रहा है—वह किसी से छिपा नहीं है। छोटे छोटे टुकडों मे बंट कर हम जेनी परस्पर एक दूसरे के शत्रु हो रहे हैं। जैनत्व के लिये यह बडी घातक और पैमाल करने वाली अवस्था है।

जैन शास्त्र नन्दी सूत्र मे (जो मुनि श्री अमोलक मृषिजी महाराज, दक्षिण हैदराबाद कृत भाषानुवाद सहित है) पृष्ठ १६५ से १६७ तक चौदह पूर्वों का वर्णन है। उसमे १४ ही पूर्वों के नाम और वे किन किन विषयों पर लिखे हुये हैं, बताते हुये प्रत्येक पूर्व की पदसंख्या बतलाई है और किस किस पूर्व के लिखने में कितनी कितनी स्याही खर्च हो सकती है इसकी कल्पना की है जो इस प्रकार है कि पहिले पूर्व के लिखने मे एक हाथी अम्बा बाडी सहित स्याहीके पात्र मे डूब जाय-जितनी स्याही खर्च होती है तथा दूसरे पूर्व मे ऐसे ही दो हाथियो जितनी स्याही और तीसरे में चार, चौथे मे आठ, पाचवे मे सोलह इसी प्रकार प्रत्येक

पूर्व मे पहिले पूर्व से दुगुणी स्याही वढाते हुये शेप के चौदहवे पूर्व मे ८१९२ हाथियो के डूवने जितनी स्याही की कल्पना की है जिसका यन्त्र इस प्रकार दिया है—

	पूर्वो के नाम	पद संख्या	स्याही-खर्च के हाथियो की संख्या
१	उत्पाद पूर्व	१००००००००	१
२	अग्रीयणी पूर्व	९६०००००	२
३	वीर्य प्रवाद पूर्व	७००००००	४
४	अस्ति नास्ति पूर्व	६००००००	८
५	ज्ञान प्रवाद पूर्व	१००००००००	१६
६	सत्य प्रवाद पूर्व	१००००००६	३२
७	आत्म प्रमाद पूर्व	२६००००००००	६४
८	कर्म प्रवाद पूर्व	१८०००००००	१२८
९	प्रत्याख्यान पूर्व	८४०००००	२५६
१०	विद्या प्रवाद पर्व	१००१००००	५१२
११	अवन्ध पूर्व	२६००००००००	१०२४
१२	प्राण प्रवाद पूर्व	१५६०००००	२०४८
१३	क्रिया विशाल पूर्व	९००००००००	४०९६
१४	लोकविन्दुसार पूर्व	१२५०००००००	८१९२
	कुल सख्या	८३९६१०००६	१६३८३

शास्त्रो मे यह भी लिखा है कि ३२ अक्षरों का एक श्लोक और एक पद के ५१०८८४६२१$\frac{३}{२}$ श्लोक होते है। ऊपर दिये हुये यन्त्र से ज्ञात होता है कि पहिले उत्पाद पूर्व, जिसमे एक करोड पद संख्या है, के लिखने मे अम्बाबाडी सहित एक हाथी डूबे जितने बडे भरे हुए पात्र जितनी स्याही (ink) खर्च होती है और बारहवं प्राण-प्रवाद पूर्व जिस मे एक करोड छप्पन लाख पद संख्या है, के लिखने मे वैसे ही २०४८ हाथियो जितने पात्र की स्याही खर्च होती है। सातवे आत्मप्रवाद पूर्व जिसमे २६ करोड पद संख्या है, के लिखनेमे ६४ हाथियो जितनी स्याही और बारहवे प्राणप्रवाद पूर्व जिसमे केवल एक करोड छप्पन लाख पद संख्या है, के लिखने मे २०४८ हाथियो जितनी स्याही खर्चहोती है। पहिले उत्पाद पूर्व मे एक हाथी जितनी और नौवे प्रत्याख्यान पूर्व जिसमे पहिले उत्पाद पूर्व से १६ लाख पदों की संख्या कम है उस मे २५६ हाथियो जितनी स्याही खर्च होने की कल्पना की है। सब पूर्वों की पद संख्या और हाथियों जितनी स्याही खर्च की संख्या पर दृष्टि डालने से सर्वज्ञता यह साफ बतला रही है कि कल्पना करने की सुन्दरता लाजवाब है। पद के अक्षरो की संख्या निश्चित करके स्याही खर्च के हाथियो की इस प्रकार की अबोध कल्पना करना अपनी सूक्ष्म बुद्धि का परिचय देना है। लाडनूं के श्री मूलचन्दजी वैद ने अपने "लोक के कथित माप का परीक्षण" शीर्षक गत दिसम्बर के 'तरुण' के लेख मे पृष्ठ ६८६ पर कहा है कि "कितन

ही जैन विद्वानो के सामने यह विरोधाभास रखा गया तो उन्होंने कहा कि ऐसा तरीका निकालो जिससे ३४३ घनरज्जू सिद्ध हो जाय।" जैन शास्त्रो मे लिखी हुई असत्य कल्पना को जबरन सत्य सिद्ध करने का तरीका चाहने वाले ऐसे विद्वानो की सतुष्टि के लिये मुझे एक कल्पना सूझ पडी वह लिख दूँ ताकि ऐसे विद्वानो को भी संतोष मिले। जिन पूर्वों मे पद संख्या बहुत गुणी अधिक है और स्याही खर्च के हाथियो की संख्या बहुत कम है उनके लिये तो यह कह दिया जाय कि पदो के अक्षर छोटे छोटे बहुत महीन थे और जिन पूर्वों की पद संख्या बहुत अधिक है उनके लिये यह कह दिया जाय कि पदो के अक्षर बहुत बड़े बडे थे। जैसे पहिले उत्पाद पूर्व के अक्षर यदि एक एक इञ्च के थे तो बारहवे प्राणप्रवाद पूर्व के प्रत्येक अक्षर उससे १४०० गुणा बड़े लगभग ११६ फुट के थे और पहिले पूर्व के अक्षर पतली स्याही के लिखे हुए और बारहवे के गाढी से गाढी स्याही के लिखे हुए थे। इस प्रकार कह कर हम उन विद्वानो के लिये तरीका सुझा सकते है। यह तो हुई स्याही खर्च के हाथियो की संख्या की बात। अब जरा चौदह पूर्व के श्लोक और अक्षर संख्या पर भी विचार कर ल। चौदह पूर्व के पदों की कुल संख्या ८३६६१०००६ है। एक पद के ५१०८८४६२१$\frac{1}{2}$ श्लोक के हिसाब से चौदह पूर्व के कुल श्लोकों की संख्या ४२८६४३८४०१२२६२२७२६ होती है और एक श्लोक के ३२ अक्षर के हिसाब से चौदह पूर्व के कुल अक्षरो की संख्या

१३७२६१९२८८३९३३५२७३२८ होती है। कोई मनुष्य एक मिनिट मे १००० अक्षर की तेज रफ्तार से भी यदि उच्चारण करे तो चौदह पूर्वों के केवल अक्षरों को उच्चारण मात्र करने में २६४७७९९५५३२ वर्ष और करीब ४ महीने लगेंगे। चौदह पूर्व के धारक सुधर्मा स्वामी बताये जाते है। उनके जीवन-चरित्र मे लिखा है कि वे ५० वर्ष गृहस्थ रहे और फिर भगवान महावीर के पास सयंम जीवन (साधुपन) व्यतीत करते हुए आखिर आठ वर्ष केवली अवस्था मे रह कर पूरे १०० वर्ष की आयु समाप्त करके वीराब्द स० २० मे मुक्ति पधारे। यह तो मानी हुई बात है कि गृहस्थ अवस्था मे उन्हे चौदह पूर्व का भान तक नहीं था, बाकी रहे ५० वर्ष जिनमे उन्होने चौदह पूर्व की इतनी बड़ी श्लोक-संख्या का ज्ञान स्वय प्राप्त किया और अपने पटधर शिष्य जम्बू स्वामी को भी करा दिया। जिन चौदह पूर्वों के अक्षरों का केवल उच्चारण-सो भी रात दिन २४ घन्टे लगातार प्रति मिनिट १००० अक्षरों की तेज रफ्तार के हिसाब से-किया जाय तो करीब २६½ अरब वर्ष लगे, उनका सम्पूर्ण ज्ञान कैसे तो उन्होंने ५० वर्ष मे खुद ने किया और कैसे जम्बूस्वामी को करा दिया। यह बड़े आश्चर्य की बात है। क्या यह कोई औषधि का मिक्सचर था कि गिलास भर कर निगल लिया गया। कल्पना की भी कोई हद होती है।

पूर्वों के स्याही-खर्च के हाथियोंकी सख्या और पदों के श्लोक एवं अक्षरों की संख्या तथा सुधर्मा स्वामी से जम्बूस्वामी आदि

को शिक्षण देने की विधि वगैरह को देख कर मुझे तो यह अनुमान होता है कि चौदह पूर्व की यह कल्पना ही निराधार होगी। सुधर्मा स्वामी से जम्बूस्वामी को और जम्बूस्वामी से प्रभव स्वामी को इसी तरह परम्परा से पूर्वों के शिक्षण का विधान है। चौदह के पश्चात् १० पूर्वधर और दस के पश्चात ४ पूर्वधर और चार के पश्चात एक जैसे जैसे ह्रास हुआ, वैसे वैसे कम होते हुए सब पूर्व विच्छेद गये बतलाते है। यह पूर्व तो जब विच्छेद गये तब गये होगे मगर ऐसी कल्पना को सुन कर जिनके हृदय मे सवाल तक पैदा नहीं हुआ, उनकी बुद्धि तो अवश्य विच्छेद गई प्रतीत होती है, वरना 'तहत वाणी' के साथ ऐसी कल्पना को भी हजम कर गये—ऐसा नहीं दीख पडता।

———
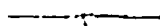
'तरुण जैन' मई-जून सन १९४७ ई०

अस्वाभाविक आंकड़े

पाठकवृन्द, मेरे लेखों से अब आपको भली प्रकार अनुभव हो गया है कि जैन-शास्त्रों मे असत्य, अस्वाभाविक और असम्भव प्रतीत होनेवाले प्रसंग एकाध नहीं, परन्तु अनेक है। मेरे लेखों मे ही आप देख चुके है कि प्रत्यक्ष मे असत्य प्रमाणित होनेवाली बातें सैंकड़ों की संख्या मे आपके सन्मुख आ चुकी हैं। गत मार्च और अप्रेलके लेखों मे असत्य, अस्वाभाविक और असम्भव तीनों ही तरह की कल्पनाओ का वर्णन है।

प्रस्तुत लेख मे पहले तीर्थंकर भगवान ऋषभ देव से लगाकर चौबीसवें भगवान महावीर तक प्रत्येक भगवान की आयु, देह-मान, साधुत्वकाल और उनके कैवल्यज्ञान-प्राप्त साधु-साध्वियों की संख्या का जैन-शास्त्रो मे जो वर्णन किया है, वह बतलाऊंगा। इन आंकडो मे असत्य, अस्वाभाविक और असम्भवपन का कितना भाग है, इसका निर्णय करना तो आपके हृदय और विवेक का काम है, मगर बुद्धि और अकल का तो यही तकाजा है कि बताई हुई संख्याएं अक्षर अक्षर सत्य कदापि नहीं हो सकतीं। जैन-शास्त्रो मे चौबीसो भगवान की आयु, शरीर की लम्बाई साधुत्वकाल आदि के विषय मे जो बतलाया है वह इस प्रकार है—

चौबीस तीर्थंकरों की आयु, शरीर की लम्बाई, साधुत्वकाल आदि का कोष्ठक आगामी पृष्ठ १२०-२१ पर देखिये।

क्रमिक	नाम	लाख पूर्व में	आयु वर्षों में
१	ऋषभ देव	८४	५९२७०४०००००००००००००००
२	अजित नाथ	७२	५०८०३२०००००००००००००००
३	सभव नाथ	६०	४२४३६००००००००००००००००
४	अभिनन्दन	५०	३५२८०००००००००००००००००
५	सुमतिनाथ	४०	२८२२४००००००००००००००००
६	पद्म प्रभु	३०	२११६८००००००००००००००००
७	सुपार्श्व नाथ	२०	१४११२००००००००००००००००
८	चन्द्र प्रभु	१०	७०५६००००००००००००००००
९	सुविधि नाथ	२	१४११२०००००००००००००००
१०	शीतल नाथ	१	७०५६०००००००००००००००
११	श्रेयांश प्रभु		८४०००००
१२	वासुपूज्य		७२०००००
१३	विमल नाथ		६००००००
१४	अनन्त नाथ		३००००००
१५	धर्म नाथ		१००००००
१६	शान्ति नाथ		१०००००
१७	कुंथु नाथ		९५०००
१८	अरि नाथ		८४०००
१९	मल्लि नाथ		५५०००
२०	मुनिसुव्रत		३००००
२१	नेमि नाथ		१००००
२२	अरिष्ट नेमि		१०००
२३	पार्श्व नाथ		१००
२४	महावीर		७२

शरीर की लम्बाई				साधुत्व-काल	केवली साधु	केवली साध्वियां
धनुष्यों में	गज	फुट	इञ्च			
५००	८७५	०	०	१ लाख पूर्व	२००००	४००००
४५०	७८७	१	६	,,	२००००	४००००
४००	७००	०	०	,,	१५०००	३००००
३५०	६१२	१	६	,,	१४०००	२८०००
३००	५२५	०	०	,,	१३०००	२६०००
२५०	४३७	१	६	,,	१२०००	२४०००
२००	३५०	०	०	,,	११०००	२२०००
१५०	२६२	१	६	,,	१००००	२००००
१००	१७५	०	०	५० हजार पूर्व	७५००	१५०००
९०	१५७	१	६	२५ ,, ,,		
				वर्षोंमें	७०००	१४०००
८०	१४०	०	०	२१०००००	६५००	१३०००
७०	१२२	१	६	१८०००००	६०००	१२०००
६०	१०५	०	०	१५०००००	५५००	११०००
५०	८७	१	६	७५००००	५०००	१००००
४५	७८	२	३	२५००००	४५००	९०००
४०	७०	०	०	२५०००	४०००	८०००
३५	६१	०	९	२३७५०	३५००	७०००
३०	५२	१	६	२१०००	३२००	६४००
२५	४३	२	३	१३७५०	२८००	५६००
२०	३५	०	०	७५००	१८००	३६००
१५	२६	०	९	२५००	१६००	३२००
१०	१७	१	६	७००	१५००	३०००
९ हाथ				७०	१०००	२०००
७ हाथ				४२	७००	१४००

जैन शास्त्रों मे तीर्थंकरों की आयु पूर्वों तथा वर्षों मे और शरीर की लम्बाई धनुष्यों तथा हाथों मे वर्णन की गई है। एक पूर्व के ७०५६०००००००००० वर्ष होते हैं और एक धनुष्य ३३ हाथ या ५ फुट ३ इञ्च का माना जाता है। आजकल के प्रायः इतिहासकार चौबीस तीर्थंकरों मे केवल अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर को सच्चा ऐतिहासिक पुरुष और भगवान पार्श्वनाथ को सन्दिग्ध रूप मे मानते हैं। हम कल्पित नहीं मानते तो भी पहिले भगवान ऋषभ देव की आयु की संख्या से दसवें भगवान शीतलनाथ स्वामी की आयु संख्या तक जो कि पूर्वों मे बताई है और ग्यारहवे भगवान श्रेयास प्रभु से बाईसवें भगवान अरिष्टनेमि तक आयु की संख्या जो वर्षोंमे बताई है, पर दृष्टि डलने से हमे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सख्याएं अवश्य कल्पित हैं। किसी भी एक व्यक्ति की आयु की सख्या के अंक इतनी अधिक सुन्नों (Ciphers) के साथ समाप्त होना असम्भव नहीं, तो असम्भव के लगभग अवश्य है। परन्तु इन संख्याओं मे तो केवल भगवान महावीर प्रभु के सिवाय तेवीसों ही तीर्थंकरो की आयु के आकडों मे कम से कम ऊपर दो सुन्न (Ciphers) और अधिक से अधिक ऊपर की सुन्नो की संख्या १७ पहुच गई है। इसी प्रकार इतनी अधिक सुन्नो (Ciphers) के साथ समाप्त होनेवाली संख्याओ की आयु का लगातार तेवीसो ही भगवानो के लिये होना क्या अस्वाभाविक नहीं है? आयु के बाबत पर्वो मे दस-दस के अन्तर से सख्या

निश्चत करना और भगवान श्रेयास प्रभु से वर्षों के अंक भी ८४,७२ ६० ३०,१० पूर्वों के जैसे ही बताना क्या स्वाभाविक माना जा सकता है ? कदापि नहीं। जिस स्थान पर आयु का पूर्वों मे बताना समाप्त किया है उसके नीचे श्रेयास प्रभु की आयु वर्षों मे बताई है। आप देखेंगे कि दसवे और ग्यारहवे भगवान के वर्षों के दरमियान अकस्मात कितना बड़ा अन्तर पड़ गया है। कहा सत्तर संख छप्पन पद्म वर्ष और कहां चौरासी लाख वर्ष। इसको हम केवल अस्वाभाविक ही नहीं परन्तु असम्भव भी कह सकते हैं। वैसे तो पूर्वों मे बताई हुई इतने अधिक वर्षों की आयु का होना ही असम्भव है मगर पूर्वों की समाप्ति और वर्षों के प्रारम्भ के स्थान मे तो ऐसा प्रतीत होता है कि कल्पना करने वालोंने आगे पीछे तक नहीं सोचा। इतिहासज्ञों के कथाश के अनुसार भगवान महावीर और भगवान पार्श्वनाथ की आयु के आकडो को यदि हम इस तालिका से अलग कर दें तो बाकी के बाईसों ही भगवान की आयु की सख्या को कल्पित के सिवाय और कुछ नहीं कहा जा सकता।

अब जरा तालिका मे वर्णित शरीर-लम्बाई की संख्या पर गौर कीजिये। इसमे भी यदि भगवान महावीर और पार्श्वनाथ के शरीर की लम्बाई की सख्या को अलग कर दें तो बाकी के बाईसों ही भगवान के शरीर की लम्बाई के आकडो का क्रम कल्पित नजर आता है। पाच सौ धनुष्य से पचास-पचास

घटाते हुए जब १०० की संख्या पर पहुचे तो सोचा कि अब पचास घटाते जाने की गुञ्जाइश नहीं है तो दस दस घटाना प्रारम्भ कर दिया और दस दस घटाते पचास धनुष्य की संख्या तक पहुच कर पाच पांच धनुष्य घटाने लगे। घटाव के ऐसे क्रम को स्वाभाविक नहीं समझा जा सकता। घटाव के इस क्रम मे एक बात ध्यान पूर्वक देखने की है कि आठवें भगवान चन्द्रप्रभु और नौवें भगवान सुबुद्धिनाथ के दरमियानी समय मे घटाव पचास धनुष्य का है और नौवें भगवान सुबुद्धिनाथ और दसवें भगवान शीतलनाथ स्वामीके दरमियान घटाव दस धनुष्य का है। इससे साफ जाहिर होता है कि यह घटाव समय के लिहाज से किया हुआ नहीं है। पचास घटाते घटाते जब देखा कि अब फिर पचास घटाने की गुञ्जाइश नहीं है तो दस दस घटाने लगे। खाना पूरी करने की दृष्टि न होती और वास्तविकता होती तो आयु के समय के लिहाज का बर्ताव ओझल नहीं रहता। कारण यहा घटाव मे समय का गुजरना ही प्रधान है। साधुत्वकाल की संख्याओं की भी यही हालत है। पहिले भगवान ऋषभदेव से आठवें भगवान चन्द्रप्रभु तक प्रत्येकका साधुत्वकाल एक लाख पूर्व यानी ७०५६०००००००००-००००० वर्ष का बताया है। इसमे आयु की संख्याके साथ कोई मिलान नहीं है मगर नौवें भगवान सुबुद्धिनाथ से बीसवें भगवान मुनि सुव्रत प्रभु तक लगातार प्रत्येक की पूरी आयु का चौथा हिस्सा साधुत्वकाल का बताया है। इस प्रकार यह

संख्याएं घडी हुई सी प्रतीत होती है और अस्वाभाविक है। चौवीसो ही भगवान के केवलज्ञान-प्राप्त साधु-साध्वियो की संख्या के आकडो की सजावट आश्चर्य जनक है। इस सजावट ने बाकी की सारी सजावट को मात कर रखा है। सारी सजावट नपी तुली है। केवलज्ञान-प्राप्त साधुओ की सख्या मे एक एक हजार और पाच सौ का क्रम से लगातार घटना और साधुओं की प्रत्येक संख्या से साध्वियो की प्रत्येक संख्या का ठीक दुगुणा होना यह साफ जाहिर कर रहा है कि यह स्वाभाविक नहीं हो सकता। केवलज्ञान प्राप्त होना पुरुपार्थ तथा शुभ करनी के फल से होता है और पुरुपार्थ तथा शुभ करनी करनेवालो की संख्या इस तरह निश्चित नहीं हो सकती। फिर इस प्रकार के क्रम से नपे तुले पैमाने पर घटाव और साधुओ से साध्वियों की संख्या का ठीक दुगुणा होना कैसे स्वाभाविक हो सकता है, यह विचारने की बात है। इस तालिका के प्राय' सब आकड़े अस्वाभाविकपन से भरे पड़े है इसके लिये कोई प्रत्यक्ष प्रमाण तो हो नहीं सकता केवल अनुमान से ही हम निर्णय कर सकते है कि यह आकडे स्वाभाविक है या अस्वाभाविक। इसलिये प्रारम्भ मे ही मैने कह दिया है कि इसका निर्णय करना आप के हृदय और विवेक का काम है। मुझे इस बात पर अभी तक आश्चर्य हो रहा है कि जैनशास्त्रो मे त्याग, वैराग्य और संयम रखने के लिये सुन्दर सुन्दर विधान देनेवाले शास्त्रकारो ने इस प्रकार अस्वाभाविक, असम्भव और असत्य प्रतीत होने-

वाली बातो की रचना किस उद्देश्य से की। यह पहेली अभी तक समझ मे नही आ रही है। दान, दया, अनुकम्पा पुण्य, धर्म आदि आवश्यक मानव-कर्तव्यों की व्याख्या करने मे तो भाषा और भावो को व्यक्त करने की त्रुटियो से आज ऐसी अवस्था उत्पन्न हो गई है कि एक ही शास्त्रो को माननेवाले हमारे तीनो श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय इन विषयो पर परस्पर लड रहे है परन्तु असत्य अस्वाभाविक और असम्भव प्रतीत होनेवाली बातो के लिये सब का एक मत और एक-सा फरमान है। अत. सब सम्प्रदाय के पथ-प्रदर्शको से मेरा विनम्र अनुरोध है कि जिस प्रकार इन असत्य, आस्वाभाविक और असम्भव प्रतीत होनेवाली बातो के विषय मे आप एक मत है उसी प्रकार दान, दया, पुन्य, धर्म आदि आवश्यक मानव कर्तव्यो की व्याख्या करने मे भी एक मत हो जायँ ताकि मानव-समाज का कल्याण हो।

'तरुण जैन' जुलाई सन् १९४२ ई०

सूत्रों का पारस्परिक विरोध

साधारणतया जैन शास्त्र दो भागो मे विभक्त किये जा सकते है। भगवान महावीर प्रभु ने जो अपने श्री-मुख से फरमाये और गणधर तथा पूर्वधर आचार्यों ने भगवान के कथन को अक्षर-ब-अक्षर परम्परापूर्वक अपने शिष्यो को बताये व तो जैन सूत्र अथवा जैन आगम के नाम से प्रसिद्ध है और पूर्वधरो के

अलावा अन्य आचार्यों व मुनियो द्वारा जो रचे गये, वे जैन ग्रन्थ या जैन शास्त्रो के नाम मे समाविष्ट किये जा सकते है। गत लेखो मे जैन सूत्रो की असत्य, अस्वाभाविक और असम्भव प्रतीत होने वाली बातो के विषय मे मैने लिखा था परन्तु प्रस्तुत लेख मे मुझे यह बतलाना है कि एक ही बात के विषय मे एक सूत्र मे कुछ लिखा हुआ है तो दूसरे मे कुछ ही। यहा तक कि एक सूत्र मे जो लिखा हुआ है दूसरे मे कही कही ठीक उसके विपरीत और विरुद्ध तक लिखा हुआ है। जिन शास्त्रो को सर्वज्ञ-वचन मान कर अक्षर अक्षर सत्य कहनेका साहस किया जा रहा है, उनकी रचना मे यदि इस प्रकार वचन-विरोध मिले तो कम से कम अक्षर अक्षर सत्य कहने का हठ तो नही होना चाहिये। जैन सूत्रो के विषय मे जो इतिहास प्राप्त है, उससे भी यह स्पष्ट जाहिर होता है कि वर्तमान समय मे जो सूत्र माने जा रहे है उन्हे अक्षर अक्षर सत्य मानना किसी तरह से भी युक्ति-सङ्गत नही हो सकता। भगवान महावीर भाषित सूत्र उनके निर्वाण काल से ९८० वर्ष पर्यन्त अक्षर-ब-अक्षर उनके शिष्यो की स्मरण-शक्ति और याददास्त पर अवलम्बित रहे, पुस्तको मे नही लिखे गये थे। इसके पश्चात् श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने विक्रम सम्वत ५२३ के लगभग उनको पुस्तको मे लिखवाये जो मथुरा और वल्लभीपुर मे ९८० से ९९३ तक १४ वर्ष पर्यन्त लिखे गये थे। मथुरा मे जो सूत्र लिखे गये, वे माथुरी वाचना के नाम से और वल्लभीपुर मे लिखे गये, वे वल्लभी वाचना के

नामसे इस समय भी प्रसिद्ध है। ९८० वर्ष पर्यन्त केवल याद-दास्त के बल पर इतनी बडी श्लोक संख्या का पाट दर पाट लगातार हरफ-ब-हरफ याद रहना युक्ति-सगत नहीं समझा जा सकता। महावीर-निर्वाण के लगभग १६० वर्ष पश्चात् भगवान के पटधर शिष्य श्री भद्रबाहु स्वामी (श्रुत केवली) के समय मे १२ वर्ष का महाभयङ्कर दुष्काल पडा जिसकी भयंकरता के परिणाम स्वरूप हजारों साधु पथ-भ्रष्ट हो गये। भगवान भाषित दृष्टिवाद नाम का बारहवा अङ्ग-सूत्र, जिस मे चौदह पूर्व और अनेक अपूर्व विद्याओ का समावेश था, लोप हो गया। ऐसी विकट अवस्था मे इतने लम्बे अरसे तक अक्षर-ब-अक्षर इस तरह स्मरण रखा जाना असम्भव के लगभग है। श्री देवर्द्धि-गणि क्षमाश्रमणने जो सूत्र लिखवाये थे, उनकी असल original प्रतियों का भी आज कहीं पता तक नहीं है। श्री जैन श्वेताम्बर कानफ्रेन्स, बम्बई ने भारतवर्ष के प्राय. नामी नामी सब प्राचीन पुस्तक-भण्डारो का अवलोकन किया, परन्तु यह प्रतिया कहीं भी नहीं मिलीं। इसी सस्था ने श्री जैन ग्रन्थावली नाम क एक पुस्तक प्रकाशित की है, जिसमे प्राय. प्राचीन पुस्तक भण्डारो मे सुरक्षित रखी हुई पुस्तकों तथा जैन आगमो की फेहरिस्त दी है। और यह भी लिखा है कि विक्रम सम्वत् १२०० से पहिले का लिखा हुआ कोई भी जैन आगम प्राप्त नहीं हुआ है। शास्त्रों का भगवान के ९८० वर्ष पश्चात् केवल याददास्त के आधार पर लिखा जाना और लिखी हुई उन असल प्रतियो का कहीं पता

तक न होना, इस पर भी उनको अक्षर अक्षर सत्य समझना जब कि प्रत्यक्ष मे असत्य प्रमाणित होनेवाली बाते इन शास्त्रों मे मौजूद है, तो इसको सिवाय कदाग्रह के और क्या कहा जा सकता है। जिस जगह किसी सूत्र का नाम लेकर उसकी महानता और बडप्पन दर्शाया गया है, उसी जगह उसका लोप होना या विच्छेद जाना भी कह दिया गया है। यह एक आश्चर्य की बात है। ताड-पत्रो पर हस्त-लिखित अन्य पुस्तक अनेक स्थानो मे दो हजार वर्ष से पहिले की अब भी देखने मे आ रही है और भगवान महावीर स्वामी के श्री धर्मदास गणि नामक एक शिष्य, जो गृहस्थ अवस्था मे विजयपुर के विजयसेन नामक राजा थे और भगवान के स्वहस्त से दीक्षा प्राप्त की थी उनकी उपदेशमाला नामकी एक हस्त-लिखित प्रति पाटण के प्राचीन पुस्तक भण्डार मे सुरक्षित पडी है, जिसका हवाला श्री जैन ग्रन्थावली मे है। ऐसी अवस्था मे जब कि लेखन-कला प्रचलित थी तो दृष्टिवाद अङ्गसूत्र लोप हो गया, चौदह पूर्व लोप हो गये, कई सूत्र जिनके पठन मात्र से देवता प्रकट होकर सेवा मे हाजिर हो जाते थे,-वे लोप हो गये—आदि कथन मे कितनी सचाई है, यह विचारने का विषय है। इतने बडे उच्च कोटि के उपयोगी ज्ञान और विद्याओ के भण्डार आगमो को लिपिबद्ध न करके कतई लोप होने देना कितनी बडी अकर्मण्यता है जब कि लेखन-कला प्रचलित थी। एक के पश्चात् दूसरा क्रमानुसार जैन सूत्रो के ८४ नाम प्रसिद्ध है जिनमे बहुत से

इस समय उपलब्ध नहीं हैं—लोप हो गये बताये जाते हैं।

जैन-श्वेताम्बर मान्यता की इस समय तीन मुख्य सम्प्रदाय हैं। सम्वेगी या मूर्तिपूजक, बाइस टोले या स्थानकवासी और तेरापन्थी। सूत्रों के मानने के विषय मे इनके विचार परस्पर भिन्न हैं। सम्वेगी या मूर्तिपूजक भगवान महावीर के पाट से अपने आपको पाट दर पाट अनुक्रम से चले आते हुये बतला रहे हैं और ८४ आगमों को मानते हैं परन्तु इनका यह कथन है कि ८४ मे से इस समय अनुक्रमसे ४५ ही आगम उपलब्ध है, बाकीमें से अनेक आगम लोप हो गये। स्थानकवासी और तेरा-पंथके विषयमे जिनाज्ञा-प्रदीप नामक ग्रन्थ का ऐतिहासिक कथन यह है कि विक्रम सम्वत् १,३१ के लगभग अहमदाबाद मे लुङ्का का नाम का एक व्यक्ति जैन धर्म की पुस्तको के लिखाने का व्यवसाय किया करता था। श्री रत्नशेखर सूरि नामक तपागच्छ के आचार्य ने लुङ्का से भगवती सूत्र की एक प्रति लिखवाई। श्री लुङ्का ने भगवती सूत्र मे, जङ्घाचारण विद्याचरण मुनि, जो लब्धि द्वारा शासवत-अशास्वत जिन मन्दिर वन्दन करने गये थे, उनके विषय के ७ पृष्ठ नहीं लिखने की गलती कर दी। इस पर आचार्य महाराज ने भगवती सूत्र की वह प्रति लेने से इन्कार किया। आचार्य महाराज के इन्कार कर देने पर श्रीसङ्घने लुङ्का को लिखवाई के रुपये नहीं दिये। इसी बात को लेकर परस्पर बहुत विवाद बढ गया और लुङ्का को उपाश्रय से धक्का देकर निकाल दिया। लुङ्का ने इस अपमान का बदला लेने की

ठान ली और इसी प्रयत्न मे रहा कि किसी तरह से इन मूर्ति-पूजको को अपमानित कर सकूं तो ठीक हो। इसी दृष्टि से उसने मूर्ति-पूजकों के माने हुये ४५ सूत्रो मे से केवल ३२ सूत्रों के मूल पाठ को मान्य रखकर बाकी के १३ सूत्रो मे स्वार्थी लोगो के कथन प्रक्षेप किये हुये हैं, कहकर अमान्य ठहराया। कारण इन १३ सूत्रो मे मूर्ति पूजा के पक्ष मे अनेक स्थानो मेस्पष्ट तौर पर विधान दिया हुआ है और पूजा को आत्म-कल्याण का उत्तम साधन बताया गया है। इसीलिये ३२ सूत्रों पर लिखे हुये भद्रबाहु स्वामी, मलयगिरि, शिलङ्काचार्य, अभयदेव सूरि आदि अनेक आचार्यों के भाष्य, चूर्णि, वृत्ति, अवचूरि, टीका, निर्युक्ति आदि के विषय में भी यह कह दिया कि जो बातें इनमे बताई हुई हमारे विचारो के अनकूल नहीं है वे हमें मान्य नहीं है। लुङ्का ने अपने प्रचार में अथक परिश्रम करके लुपक मत के नाम से अपना समप्रदाय चालू कर दिया। इस लुपक मत में से विक्रम सम्वत् १७०६ में लवजी नाम के एक साधु ने अपना टोला कायम किया जिसके बढते बढते २२ टोले बन गये। वही बाईस टोले अथवा स्थानकवासियो के नाम से इस समय प्रसिद्ध है। इन बाईसटोलो मे से एक टोला श्री रघुनाथ जी नाम के आचार्य का था जिसमें से विक्रम सम्वत् १८१८ म श्री भीखनजी ने अलग होकर तेरापथ नाम का अपना मत चालू किया। तेरापंथी भी स्थानकवासियों की तरह ३२ सूत्रों के केवल मूल पाठ को

ही मानते हैं, परन्तु इन दोनों के विचारो और प्रचार मे रात-दिन का अन्तर है। मूर्तिपूजक और स्थानकवासियो के विचारो मे केवल मूर्ति-पूजा के विषय को छोड कर दान-दया आदि विषयो मे पूर्ण सादृश्य है। तेरापंथ मत स्थानकवासियों मे से निकला हुआ है इसलिये मूर्ति-पूजा के विषय मे इनके विचार स्थानकवासियो जैसे ही है परन्तु दान, दया के विषय मे सर्वथा भिन्न है। स्थानकवासी भूख-प्यास से मरते प्राणी को सामाजिक व्यक्ति द्वारा अन्न-पानी की सहायता से बचाने मे पुण्य मानते है और तेरापंथी ऐसा करने मे एकान्त पाप मानते है। स्थानकवासी सार्वजनिक लाभ के कामो को निस्वार्थ भाव से करने मे सामाजिक व्यक्ति को पुण्य हुआ मानते है और तेरापंथी एकान्त पाप मानते है। स्थानकवासी श्रावक माता-पिता की सेवा शुश्रूषा करने मे पुण्य मानते है और तेरापंथी एकान्त पाप मानते हैं।

बत्तीस सूत्रो के मूल पाठ को अक्षर अक्षर सत्य मानने मे तीनो का एक मत है, ऐसा कहा जा सकता है। सूत्र ८४ को छोडकर ४५ माने गये और ४५ मे से १३ मे स्वार्थी लोगो के प्रक्षेप का दोप लगा कर ३२ माने जाने लगे। भविष्य मे और भी कुछ मे किसी तरह का दोप लगा दिया जाकर कम संख्या मे माने जाने लगे, ऐसा भी हो सकता है। सूत्रो के विषय मे एक विद्वान एव शास्त्रज्ञ मुनि महाराज से बात चीत

हुई तो कहने लगे कि जो ११ अंग सूत्र हैं उनमें भगवान का शुद्ध आध्यात्मिक ज्ञान है, बाकी के सूत्रों की सब बात विश्वास योग्य नहीं भी हो सकती है। मैंने जब अंग सूत्रों की असत्य प्रतीत होनेवाली बात उनके सन्मुख रखी तो चुप हो गये और कहने लगे कि सूत्रों पर श्रद्धा रखना ही उचित है। मैंने कहा—महाराज, भगवान खुद फरमा रहे हैं कि असत्य को सत्य समझना मिथ्यात्व है तब प्रत्यक्ष में जो बात असत्य है उस पर आप श्रद्धा रखने को कैसे कह सकते हैं, तो कुछ उत्तर नहीं मिला।

११ अंग, १२ उपांग, ४ मूल, ४ छेद, १ आवश्यक, इस प्रकार ३२ सूत्र कहलाते हैं, जिनके नाम निम्न लिखित हैं—

ग्यारह अङ्ग	बारह उपाङ्ग	चार मूल
१ आचाराङ्ग	१२ उववाई	२४ दसवैकालिक
२ सूयगडांग	१३ रायप्रश्रेणी	२५ उत्तराध्ययन
३ ठाणाङ्ग	१४ जीवाभिगम	२६ नन्दी
४ समवायाङ्ग	१५ पन्नवणा	२७ अनुयोगद्वार
५ भगवती	१६ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति	**चार छेद**
६ ज्ञाताधर्मकथाङ्ग	१७ सूर्यप्रज्ञप्ति	२८ बृहत्कल्प
७ उपासकदशाङ्ग	१८ चन्द्रप्रज्ञप्ति	२९ व्यवहार
८ अन्तगड दशाङ्ग	१९ पुष्फिया	३० दशाश्रुतस्कन्ध
९ अनुत्तरोववाई	२० पुप्फचूलिया	३१ निशिथ
१० प्रश्न व्याकरण	२१ कप्पिया	**आवश्यक**
११ विपाक	२२ कप्पवडंसिया	३२ आवश्यक सूत्र
	२३ वन्हि दशा	

ऊपर लिखे बत्तीस सूत्रों मे जो ११ अङ्ग सूत्र बताये गये हैं, वे १२ थे परन्तु दृष्टिवाद नाम का बारहवा अङ्गसूत्र लोप हो गया, बाकी के ११ अङ्गसूत्र यहा भरत क्षेत्र मे माने जा रहे है। इन बारह अङ्गसूत्रों के विषय मे यह लिखा है कि महाविदेह क्षेत्र मे जहां कि अरिहन्त भगवन्त विराज रहे है, वहा इन ही नामों के बारह अङ्गसूत्र है, जो शास्वत हैं यानी अनादिकाल से है और अनन्त काल तक रहेगे। भरत क्षेत्र मे यहा पर जो ११ अङ्गसूत्र इस समय हैं, वे इन ही के अंश मात्र हैं और शास्वत नहीं हैं। महाविदेह क्षेत्र के शास्वत द्वादशागी के रचनाक्रम और विस्तारक्रम के विषय मे यहा के समवायांग सूत्र और नन्दी सूत्र दोनों मे अलग अलग वर्णन किया हुआ है, जिस मे परस्पर भिन्नता है। शास्वत द्वादशागी के विषय मे एक सूत्र मे कुछ ही लिखा हुआ है और दूसरे मे कुछ ही, यह खास विचारने की बात है। दोनों सूत्रों के वर्णन मे जब परस्पर भिन्नता है तो कौन से सूत्र का वर्णन सच्चा माना जाय और कौन से का मिथ्या? विस्तार-क्रम को सात प्रकार के बोलों से बताया है, जो इस प्रकार है—१ परितावाचना २ अनुयोगद्वार ३ बेड़ा ४ श्लोक ५ निर्युक्ति ६ प्रतिश्रुति ७ संग्रहणी। रचनाक्रम को ६ प्रकार के बोलो से बताया है, जो इस प्रकार है —१ श्रुतस्कन्ध २ अध्ययन ३ वर्ग ४ उद्देशा ५ समउद्देशा ६ पद संख्या। निम्नलिखित शास्वत अङ्गसूत्रो के विषय मे समवायाङ्ग और नन्दी दोनों सूत्रा के

बताने मे जो परस्पर भिन्नता है, वह इस प्रकार है—

(१) आचाराङ्ग सूत्र के बाबत नन्दीसूत्र मे विस्तार-क्रम के सात बोल बताये हैं, परन्तु समवायाङ्ग मे केवल ६ बोल बताये है। संख्याता संग्रहणी नहीं बताया।

(२) सूएगडाङ्ग सूत्र के बाबत नन्दी सूत्र मे विस्तारक्रम मे केवल ५ बोल बताये हैं और सामवायाङ्ग मे ६ बोल। संख्याता वेढा का होना अधिक बतलाया है

(३) ठाणाङ्ग सूत्र के बाबत नन्दी मे विस्तारक्रम के ७ बोल बताये हैं और सामवायाङ्ग सूत्र मे ६ बोल। निर्युक्ति का होना नहीं बतलाया।

(४) समवायाङ्ग सूत्र के बाबत नन्दी मे संख्याता संग्रहणी का होना नहीं बताया, जो समवायाङ्ग मे बताया है और सामवायाङ्ग मे सख्याता निर्युक्ति का होना नहीं बताया, जो नन्दी मे बताया है।

(५) भगवती सूत्र के बाबत नन्दीसूत्र मे रचनाक्रम मे २८८००० पद संख्या बताई है जिसको समवायाग सूत्र मे केवल ८४००० पद संखया बताई है। अंगसूत्रों के रचनाक्रममे पहिले आचारग सुत्र की पद सख्या से दो गुणी बताई है, जैसे आचारग की १८००० सूयगडागे की ३६०००, ठाणाग की ७२०००, सामवायाग की १४४०००, भगवती की २८८०००, और इसी तरह दो गुणे करते हुए बाकी के सब अङ्गसूत्रो की

पद-संख्या बताई है। भगवती के लिये नन्दी सूत्र में २८८००० की पद-सख्या दो गुणा क्रम के अनुसार ठीक है, मगर समवायाग मे ८४००० किस कारण से बताई है, यह पता नहीं। २८८००० और ८४००० मे बहुत बडा अन्तर है।

(६) ज्ञाताधमकथाग सूत्र के बाबत नन्दी सूत्र मे ३½ करोड कथा का होना बताया है और समवायाग सूत्र मे ३½ करोड आख्याइका होना बताया है जब कि इस स्थान पर दोनो ही शब्द अपना अपना अर्थ रूढ शास्त्रों के अनुसार रखते है। यह साढे तीन करोड की गणना भी सर्वथा अयुक्त है। कारण, सूत्र मे कहा है कि धर्म-कथा के १० वर्ग है और एक वर्ग की पांच पांच सौ आख्याइका है, एक एक आख्याइका मे पांच पांच सौ उपाख्याइका है, एक एक उपाख्याइका मे पांच पांच सौ आख्याइका-उपाख्याइका है। इस प्रकार गुणा करने से यह संख्या ३½ करोड से बहुत अधिक होकर यह गणना अयुक्त ठहरती है। नन्दीसूत्र मे रचनाक्रम के १९ उद्देशा और सामवायाग मे २९ उद्देशा तथा नन्दी सूत्र मे १९ सम-उद्देशा और समवायाग मे २९ समउद्देशा बताये है।

(७) उपासक दशाग सूत्र के बाबत नन्दी और समवायाग के बताने मे किसी प्रकार का विरोध नहीं है।

(८) अन्तगड दशाग सूत्र मे अध्ययन के विषय मे कुछ नहीं कहा, जब कि समवायाग सूत्र मे १० अध्ययन बताये है।

नन्दीसूत्र मे ८ वर्ग और समवायाग मे ७ वर्ग बताये है। नन्दी मे ८ उद्देशा और समवायाग १० उद्देशा। नन्दी मे ८ समउद्देशा और समवायाग मे १० समउद्देशा बताये है।

(९) अनुतरोववाई सूत्र के बाबत नन्दी सूत्र मे विस्तार-क्रम के ६ बोल बताये हैं और समवायांग मे ७ बोल। सग्रहणी का होना अधिक बताया है नन्दी सूत्र मे अध्ययन के विषय मे कुछ नहीं कहा है जहा समवायाग मे १० अध्ययन बताये है। नन्दी सूत्र में ३ उद्देशा और समवायाग मे १० उद्देशा। नन्दी मे ३ समउद्देशा और समवायाग मे १० समउद्देशा बताये है।

(१०) प्रश्न व्याकरण सूत्र के बाबत नन्दी सूत्र मे विस्तार-क्रम के ६ बोल बताये है जब कि समवायांग मे ७ बोल है। सग्रहणी का होना अधिक बताया है। नन्दी सूत्र मे अध्ययन ४५ बताये है जब कि समवायाग सूत्र मे अध्ययन के बारे मे कुछ नहीं कहा है।

(११) विपाक सूत्र के बाबत नन्दी मे श्रुतस्कन्ध बताये है, जब की समवायाग मे कुछ नहीं कहा है। समवायाग सूत्र मे एक स्थान मे २० अध्ययन बताये है और दूसरे स्थान मे ५५ व समवायाग मे ११० अध्ययन बताये है।

(१२) दृष्टिवाद अङ्गसूत्र के बाबत नन्दी और समवायाग के बताने मे विरोध नहीं है। सब प्रकार के भावों का होना कहा गया है।

महाविदेह क्षेत्रस्थित १२ अङ्गसूत्रों के विस्तार–क्रम और रचना-क्रम के बताने मे समवायाङ्ग सूत्र ओर नन्दी सूत्र के दरमियान जो अन्तर है, वह ऊपर बताया जा चुका है। सर्वज्ञो के बचनो मे जहा एक अक्षर भी इधर-उधर होने की गुञ्जाइश नहीं और निश्चय पूर्वक अक्षर-अक्षर सत्य होने चाहिये, वहां उनके वचनों मे इस प्रकार एक ही बात के विषय मे एक सूत्र मे कुछ ही और दूसरे मे कुछ ही कहा हुआ हो तो सहज ही यह कहा जा सकता है कि ऐसे वचन सर्वज्ञ वचन नहीं है और यह सूत्र सर्वज्ञ-भाषित नहीं हैं। विद्वान शास्त्रज्ञो से मेरा विनम्र अनुरोध है कि इस विषय का यदि कोई समाधान हो सके तो कृपा करके 'तरुण जैन' द्वारा या मेरे से सीधे पत्र-व्यवहार द्वारा समाधान करे। एक ही बात के विषय मे एक सूत्र मे कुछ ही लिखा हुआ है और दूसरे मे कुछ ही। ऐसे सैकड़ों प्रसङ्ग सूत्रों मे मिलते हैं जिन मे से टीका-कारों ने कुछ का समधान करने का प्रयास भी किया है। बहुत थोडो का ठीक समाधान हुआ है, बाकी के लिये यही कहा जा सकता है कि केवल लीपा-पोती की गई है।

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सभा, कलकत्ता से प्रकाशित होने वाली 'विवरण-पत्रिका' "के गत अप्रैल के अङ्क मे" आधुनिक विज्ञान की नई खोज" शीर्षक एक लेख मैंने देखा है जिस में सम्पादक महोदय ने लिखा है कि "चाहे वैज्ञानिक कितने ही बडे क्यों न हों, वे दो ज्ञान के धारक है उनका ज्ञान पूर्ण नहीं हो

सकता ' केवलज्ञानियों ने दिव्य दृष्टि से जो बात देखी है, उसके साथ साधारण मति-श्रुति अज्ञान के धारक व्यक्तियों के परिवर्तन-शील मत की तुलना करना अयुक्त है। ज्ञानियों के वचनों मे शङ्का करना सम्यकत्व का दूषण है। मति-श्रुति अज्ञान के धारक वैज्ञानिक लोग ज्यो ज्यों नई चीज को देखते है, प्रकाश करते है, उनकी खोज केवलज्ञानी के ज्ञान की बराबरी कैसे करेगी ?" ऐसा कहकर सम्पादक महोदय ने Sir James Jeans के Royal Institute मे हाल ही मे दिये हुये एक भाषण का कुछ उद्धरण देकर एक यन्त्र द्वारा ग्रहों के ज्योति विकीर्ण से वैज्ञानिकों की पूर्व निश्चित धारणा से अभी की धारणा बदले जाने का हवाला देते हुए विज्ञान के कथन को अविश्वास योग्य ठहराने का प्रयास किया है। विवरण-पत्रिका के गत जुलाई के अङ्क मे भी उन्होंने विज्ञान पर से लोगों की श्रद्धा हटाने की चेष्टा की थी और इस लेख मे भी विज्ञान को मति-श्रुति अज्ञान के भेदो मे लेते हुये वैज्ञानिक लोगो को अज्ञान के धारक बताकर उनके कथन को अविश्वास-योग्य बताने का प्रयास किया गया है। यदि मेरे लेखो को दृष्टिगत करके विज्ञान को अविश्वास-योग्य ठहराने का प्रयास किया जा रहा हो, तब तो मैं कहूगा कि कुम्हार कुम्हारी वाले मसले की तरह गधे के कान एंठने का सा कदम नजर आ रहा है। विज्ञान का यदि कोई अपराध है तो केवल इतना ही है कि वह सर्वज्ञता का मिथ्या दावा पेश नहीं करता। इन्सान को बुद्धि

पूर्वक विचारने का मौका देता है और अन्वेषण का रास्ता खुला रखता है। उक्त सम्पादक महोदय से मेरा विनम्र अनुरोध है कि विज्ञान को अविश्वास योग्य ठहराने का प्रयास न करके मेरे प्रश्नों के समाधान करने की चेष्टा करें जिस से सफलता होने पर सर्वज्ञ वचनों पर स्वयमेव ही श्रद्धा होनी निश्चित है।

'तरुण जैन' अगस्त सन १९४० ई०

टिप्पणी: लेखक का सुझाव

इस लेखमाला के १५ लेख प्रकाशित हो चुके जिनमे जैन शास्त्रो की असत्य, अस्वाभाविक और असम्भव प्रतीत होनेवाली बातो के विषय मे शास्त्रज्ञो एवम् विद्वानो के समक्ष समाधान की आशा से मैने प्रश्न रखे थे। किसी प्रकार का समाधान न मिलने पर गत मार्च के लेख मे चुनौती तक दी मगर फिर भी किसी सज्जन ने समाधान करने का प्रयास तक नही किया। 'तरुण जैन' को प्रति मास हजारो जैनी पढते है। यह तो हो ही नहीं सकता कि इन पढनेवालो मे सब ही शास्त्रो के अज्ञान और लेखो के तर्क का न समझने वाले ही है। जहाँ तक मुझे मालूम है हमारे थली प्रान्त के बहुत से विद्वान सन्त मुनिराज इन लेखो को बडे ध्यान से पढते है, मगर सब मौन है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि यह बातें वास्तव मे जैसी मैने लिखी है, वैसी ही मान ली गई है। जब तक मेरे लेख भूगोल-खगोल की प्रत्यक्ष प्रमाणित होनेवाली बातो के विषय मे निकलते रहे तब तक यह शास्त्रज्ञ जन सर्व-साधारण को यह कहते रहे कि भूगोल-खगोल की बात जैन शास्त्रो की लिखी हुई बातो से मेल नहीं खाती यानी सत्य प्रमाणित नहीं होती, बहुत से शास्त्र लोप हो गये शायद उनमे इनका सही वर्णन होगा। मगर जब से मैने गणित से असत्य प्रमाणित होने वाली सबजो

की बातें सामने रखी हैं, तब से जो सज्जन गणना करना जानते है, उनके हृदय मे तो पूर्ण विश्वास होगया है कि वर्तमान शास्त्र न तो सर्वज्ञों के वचन ही है और न अक्षर अक्षर सत्य ही। कई विद्वान सज्जनों ने तो इन विषयो को अच्छी तरह समझ कर मेरे समक्ष यह भी स्वीकार कर लिया है कि वास्तव मे वर्तमान शास्त्र सर्वज्ञ-प्रणीत और अक्षर-अक्षर सत्य कदापि नहीं हो सकते।

जिन शास्त्रों से यह सिद्धान्त निकल रहे हो कि भूख प्यास से मरते हुए को अन्न पानी की सहायता से बचाना, शिक्षा- प्रचार करना, माता-पिता-पति आदि की सेवा शुश्रूषा करना, जलते हुए मकान के बन्द द्वारो को खोल कर अन्दर के मनुष्यों को बचा देना, बाढ भूकम्प आदि दुर्घटनाओ से पीड़ित विपत्ति ग्रस्त लोगों की सहायता करना आदि सार्वजनिक लाभ के परोपकारी कार्यों को निस्वार्थ भाव से करने पर भी सामाजिक व्यक्ति को एकान्त पाप और अधर्म होता है, तो ऐसे शास्त्रों को अक्षर-अक्षर सत्य मान कर अमल मे लाने का परिणाम मानव समाज के लिये अत्यन्त घातक है। यह तो मानी हुई वात है कि मानव समाज परस्पर के सहयोग पर जिन्दा है—इसलिये सब का सबके प्रति सहयोग रहना आवश्यक कर्तव्य है। मेरे लेखों मे बताई हुई शास्त्रो की असत्य, अस्वाभाविक और असम्भव बातो द्वारा जब कि यह स्पष्ट प्रमाणित हो रहा है कि न तो यह शास्त्र सर्वज्ञ-प्रणीत है और

न अक्षर-अक्षर सत्य ही, ऐसी दशा मे इन शास्त्रों को सर्वज्ञ बचन और अक्षर-अक्षर सत्य मानने वालों का यह कर्तव्य हो जाता है कि या तो इन लेखो की बातों का उचित समाधान करके अक्षर-अक्षर सत्य को प्रमाणित करें या मानव-समाज के परोपकारी और सार्वजनिक लाभ के कामो को निस्वार्थ भाव से करने वाले को एकान्त पाप और अधर्म होता है, ऐसा कहने के लिये शास्त्रो का आधार छोड कर ऐसे घातक सिद्धान्तों का प्रचार न करें, कारण उनकी दृष्टि मे ऐसे सत्कार्यों के करने मे यदि इन शास्त्रो से एकान्त पाप होने का अर्थ निकलता भी हो तो, असत्य मान लें। सावजनिक लाभ के परोपकारी कामो को निस्वार्थ भाव से करने मे धर्म न मान कर यदि पुण्य का होना भी मान लिया जाय तो भी मानव-समाज के लिये इतना अनिष्ट नहीं होता। कारण पुण्य के लोभ मे इन सब कामो के करने की मनुष्य की प्रवृत्ति अवश्य बनी रहती है मगर एकान्त पाप मान लेने पर तो कौन ऐसा अज्ञानी और-ना-समझ होगा जो समझ-बूझ कर अपने समय, शक्ति और धन की व्यर्थ हानि कर भी एकान्त पाप से अपने आपको खामखा दु खो के गर्त मे डालेगा। जिस काम के करने मे अपना खुद का तनिक भी स्वार्थ नहीं, किसी प्रकार का निजी लाभ नहीं, वह भूल कर भी ऐसा किस लिये करेगा। उसकी भावना तो यही रहेगी कि दूसरा कोई कष्ट पाता है, तो उसके कर्मों का भोग वह भोगे। मैं बीच मे पड़ कर व्यर्थ ही

एकान्त पाप की गठडी किस लिये सिर पर ल जिसके फल स्वरूप मुझे निकेवल दु:खों के गर्त मे पड़ना पडे।

जैनी लोग धर्म और पुण्यकी व्याख्या इस प्रकार करत है कि जिस (सम्वर निर्जरा की) क्रिया के करने स निकेवल मोक्ष-प्राप्ति हो, उसे धर्म कहते है और जिस कार्य के करने मे शुभ कर्मो का बन्ध हो वह पुण्य है। शुभ कर्मो के बन्ध होने का परिणाम यह होता है कि नाना प्रकार के ऐहिक सुखो की प्राप्ति और मोक्ष-प्राप्ति करने के साधनो की सुगमता और शुभ अवसर प्राप्त होता है।

ऊपर कहे हुए सार्वजनिक लाभ क परोपकारी कार्यों को करने मे धर्म न मान कर यदि पुण्य (शुभ कर्मा का बन्ध) होना मान लिया जाय और साधु ऐसे कर्मो को स्वय अपने तन से न करें तो किसी हद तक माना भी जा सकता है। कारण कर्म-बन्ध होने के कार्यों को करने का साधु के लिय विधान नहीं है, चाहे वे कर्म शुभ हो चाहे अशुभ। साधु न तो कर्मो को नष्ट करने के लिये ही संयम व्रत आदर है। मगर सद्गृहस्थो के लिये तो शुभ कर्मो के बन्ध होने का कथन समाज-हित के लिये श्रेयस्कर और लाभप्रद ही है। अत सार्वजनिक लाभ के परोपकारी कामो के करने म एकान्त पाप मानने वाले सज्जनो से मेरा विनम्र विनय है कि ऐसे कामो के करने मे आप पुण्य का होना बतलाने लग (जैसा कि अन्य सब जैनी बतला रहे है) ताकि सामाजिक हितो का भी नतिप

न हो और साधु-जीवन का तथाकथित विधान भी कर्म-बन्धन से विमुक्त बना रहे।

ज्वार-भाटे सम्बन्धी कपोल-कल्पना

इस लेख मे जैन शास्त्रों मे वर्णित ज्वार-भाटे की कल्पना के विषय मे लिखना है।

ज्वार-भाटे के विषय मे भगवान महावीर प्रभु से श्री गौतम स्वामी ने पूछा कि अहो भगवन्! लवण समुद्र का पानी अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा को क्यो बढ़ता है और क्यो कम होता है? भगवान ने उत्तर दिया कि हे गौतम! जम्बूद्वीप के चारों तरफ लवण समुद्र मे ९५-९५ हजार योजन जावे तब बलयमुख, केतुमुख, युव, और ईश्वर नामक कुम्भ के आकार के ४ पाताल कलश चारो दिशाओ मे है। प्रत्येक पाताल कलश एक लाख योजन की ऊंचाई वाला है जो जल मे डूबा हुआ है। मूल मे दस हजार योजन चौडा, मध्य मे एक लाख योजन चौड़ा और ऊपर दस हजार योजन चौडा है। इनकी ठीकरी सर्वत्र एक हजार योजन मोटाई की है। इन पाताल कलशो के तीन तीन भाग करने पर एक एक भाग ३३३३३⅓ का होता है। नीचे के भाग मे वायु, बीच के भाग मे वायु और जल एक साथ और उपर के भाग मे निरेवल जल है। चारो दिशाओ के इन चार पाताल कलशो के अलावा इनके बीच मे ९-९ पंक्तियों छोटे पाताल कलशों की है। प्रत्येक बड़े पाताल कलश के पास

१६७१ छोटे पाताल कलश ६ पंक्तियों में लगे हुए हैं। सब मिला कर ४ बड़े और ७८८४ छोटे पाताल कलश हैं। प्रत्येक छोटे पाताल कलश का माप इस प्रकार है—एक हजार योजन लम्बा, पानी मे डूबा हुआ है। मूल में १०० योजन चौड़ा मध्य में १००० योजन चौड़ा और मुखपर १०० योजन चौड़ा है। इन की ठीकरी १० योजन मोटाई की है। तीन भाग करने पर इन का प्रत्येक भाग ३३३⅓ योजन का होता है जिस में नीचे के भाग में वायु, बीच के भाग मे वायु और जल एक साथ और ऊपर के भाग में निकेवल जल है। इन सब पाताल कलशों में नीचे के और बीच के भाग में ऊर्ध्व-गमन स्वभाव वाली वायु उत्पन्न होती है, हिलती है, चलती है, कम्पित होती है क्षुब्ध होती है और परस्पर सङ्घर्ष होता है तब पानी उपर उछलता है और बढ़ता है। जब नीचे के और बीच के भाग में ऊर्ध्व गमन स्वभाव वाली वायु शान्त हो जाती है, तब पानी नीचा हो जाता है। इस तरह अहोरात्रि में यानी ३० मुहूर्त में दो वक्त वायु उत्पन्न होती है, तब ज्वार होता है और दो बार भाटा होता है। यह है जैन शास्त्रों में ज्वार भाटे का कारण। यह पाताळ कलश शास्वत है इस लिये इन के योजन को २००० कोस के एक योजन के हिसाब से समझना चाहिये।

ज्वार भाटे के विषय में वर्तमान अन्वेषणा से जो प्रमाणित हुआ है, वह इस प्रकार है। समुद्र के जल-तल के ऊपर उठने को ज्वार और नीचे उतरने को भाटा कहते हैं।

प्रत्येक २४ घन्टे ५२ मिनट मे दो दो वार समुद्र का जल-तल ऊपर उठता है और दो वार नीचा वैठ जाता है। एक ही समय पर सब स्थानो मे ज्वार भाटा नहीं आता—भिन्न भिन्न स्थानो पर ज्वार और भाटे का समय भिन्न भिन्न होता है परन्तु प्रत्येक स्थान पर ज्वार और भाटे के आने का समय पूर्व निश्चित होता है। उसमे अन्तर नहीं पडता। ज्वार की लहरे क्रमानुसार पृथ्वी क सब जलमय स्थानो पर पहुचती है और इस प्रकार ज्वार भाटे का चक्र पृथ्वी की परिक्रमा सी करता रहता है इस चक्र का कभी अन्त नहीं होता। ज्वार भाटे का सम्बन्ध चन्द्रमा से है। चन्द्रमा पृथ्वी के चारो तरफ २२८७ मील प्रति घन्टे की गति से परिक्रमा करता है। ज्वार भाटे की उत्पत्ति पृथ्वी और चन्द्रमा की पारस्परिक गुरुत्वाकर्षण शक्ति से होती है। यह आकर्षण शक्ति पदार्थों के द्रव्य की मात्रा के अनुपात मे बढ़ती है और उनके बीच की दूरी के वर्ग के अनुपात मे कम होती है पृथ्वी का अधिकास भाग जलमग्न है पृथ्वी पर जल का एक प्रकार आवरण सा चढा हुआ है। गुरुत्वाकर्पण शक्ति के कारण जल का आवरण पृथ्वी पर बधा सा है परन्तु चन्द्रमा का आकर्पण उसको अपनी तरफ खींचता है परिणाम यह होता है कि चन्द्रमा के ठीक सामने पडने वाले प्रदेश मे जहां उसका खिचाव सब से अधिक होता है वहा का जल चन्द्रमा की तरफ खिचता है और आस-पास के जल-तल से

ऊँचा हो जाता है। चन्द्रमा प्रति २४ घन्टे ५२ मिनिट मे पृथ्वी की परिक्रमा करता है अर्थात् जो स्थान आज ७ बजे चन्द्रमा के सामने पडेगा वह कल ७ बज कर ५२ मिनिट पर फिर चन्द्रमा के सामने पडेगा। ज्वार आने के ठीक ६ घन्टे १३ मिनिट पश्चात् भाटा आता है। ज्वार दो तरह का होता है बृहत ज्वार (Spring tide) और लघु ज्वार (Neap tide)। चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति के अलावा पृथ्वी पर सूर्य की गुरुत्वाकर्षण शक्ति का भी प्रभाव पडता है। ज्वार भाटे मे प्राय चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति ही प्रधान रहती है परन्तु सूर्य का प्रभाव भी पडता है जिन दिनों मे सूर्य और चन्द्रमा दोनो पृथ्वी की एक ही दिशा मे होते हैं, उन दिनो मे दोनो की आकर्षण शक्तियों का सयुक्त प्रभाव पडता है। फल स्वरूप ज्वार का वेग अधिक हो जाता है और समुद्र का जल अधिक ऊचा उठता है। यही कारण है कि पूर्णिमा और अमावश्या के दिनो मे समुद्र मे ऊंचा या बृहत ज्वार (Spring tide) होता है। इसके विपरित शुक्ल और कृष्णाष्टमी को सब से नीचा या लघु ज्वार (Neap tide) होता है इन दिनो सूर्य और चन्द्रमा समकोण की स्थिति मे होते है और दोनो की आकर्षण शक्तियां एक दूसरे के विरुद्ध काम करती है। गणना से यह अनुमान हुआ है कि चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति जल को लगभग ५६ सेन्टीमीटर खिचती है और सूर्य की आकर्षण शक्ति

२५ सेन्टीमीटर, कारण सूर्य बहुत दूर है। इस प्रकार बृहत ज्वार के दिनों में ५६+२५=८१ सेन्टीमीटर का खिंचाव होता है परन्तु नीचे-लघु ज्वार के दिनों में ५६—२५=३१ सेन्टीमीटर का खिंचाव रह जाता है। ज्वार भाटे की ऊंचाई-नीचाई अधिकतर समुद्र तट की बनावट और पृथ्वी, चन्द्रमा और सूर्य की स्थितियों के ऊपर निर्भर रहती है।

संसार में सबसे ऊंचा ज्वार अमेरिका के तट पर नोवास्कोशिया में फण्डी की खाडी Bay of Fundy में आता है। यहां पर ज्वार की लहरें लगभग ७० फीट ऊंची हो जाती हैं। जल की गहराई और स्थल की दूरी का भी गहरा प्रभाव पडता है। जहां जल बहुत अधिक गहरा होता है वहां ज्वार की लहरें बडी तेजी से आगे बढती हैं—जैसे एटलाण्टिक महासागर की विषुवत रेखा के समीपवाले स्थानों में ज्वार की भाट ५०० मील प्रति घन्टे के हिसाब से आगे बढती है। पृथ्वी अपनी धुरी पर पश्चिम से पूर्व की तरफ घूमती है, इसलिये चन्द्रमा पूर्व से पश्चिम की तरफ चलता मालूम होता है जहां जल की अधिकता है, वहां चन्द्रमा का खींचाव अधिक प्रत्यक्ष मालूम होता है। यही कारण है कि दक्षिणी गोलार्द्ध के उस जल खण्ड में जहां केवल आस्ट्रेलिया ही विशाल स्थल खण्ड है, चन्द्रमा का विशेष प्रभाव दिखाई पडता है और जल का वेग पूर्व से पश्चिम की तरफ बहता हुआ प्रत्यक्ष दिखाई देता है। जब ज्वार किसी नदी की धारा से टकराता है तो नदी के

ऊपर जल की धार उलटी बढती है। इसकी ऊंचाई कभी कभी बहुत अधिक हो जाती है। ज्वार के वेग से चढा हुआ जल नदी के प्रवाह के कारण ऊपर चढने से रुक जाता है और एक प्रकार से जल की दीवार सी खडी हो जाती है। पानी की इसी ऊची दीवार को 'बाण' (Tidal Bore) कहते है।

ज्वार भाटे का जिनको प्रत्यक्ष अनुभव है, वे अनुमान कर सकते हैं कि इस विषय की जैन शास्त्रों मे की हुई "बुझ-बुजागरी" कल्पना कहा तक सत्य है? समुद्र मे पानी ऊपर उठता और नीचे बैठ जाता है, यह देख कर सर्वज्ञों ने सोचा कि सर्वज्ञता के नाते इस मसले का भी तो कोई समाधान करना चाहिये। पृथ्वी और चन्द्रमा के गुरुत्वाकर्षण का तो पता था नही अत उन्होंने सोचा कि यदि इसका कोई कारण हो सकता है तो समुद्र के भीतर ही हो सकता है और वह भी कहीं वायु के वेग का ही। बस फौरन बड़े बड़े पाताल कलशो की कल्पना कर डाली और कलशो मे वायु भर दी। कलशों के तीन भाग करके नीचे के भाग मे वायु और उसके उपर (बीच) के भाग मे वायु और जल एक साथ और उपर के भाग में केवल जल बता दिया— क्योंकि उन्हें ऊपर के जल को ही तो बढता हुआ और कम होता हुआ दर्शाना था। मगर यह नहीं सोचा कि जल वायु से वजन मे बहुत अधिक भारी होने के कारण वायु के

ऊपर वह ठहर नहीं सकता यानी कलशों मे जल नीचे बैठ जायगा और वायु ऊपर उठ जायगी और कलशो के मुख खुले रहने के कारण वायु निकल कर बाहर चली जायगी। फिर किस तरह से तो ज्वार होगा और किस तरह से भाटा। यह एक सीधी सी बात थी, मगर सर्वज्ञों ने अपने तर्क को कतई तकलीफ नहीं दी। सोच लिया सर्वज्ञता की छाप मार देने पर फिर कोई सवाल उठ ही नहीं सकेगा, तो किस लिये ऊहापोह की जाय? मनुष्य मात्र जानता है कि किसी खुले मुंह के पात्र मे नीचे वायु और ऊपर जल कभी नहीं ठहर सकता मगर इस सर्वज्ञता की छाप ने भक्तों के तर्क और आखो पर परदा डाल रखा है। शास्त्रों के रचने वालो ने भगवान के नाम पर व्यर्थ की असत्य कल्पनाएं करके प्रभु महावीर के पवित्र जीवन पर नाना तरह के अशिष्ट आवरण चढा दिये। शास्त्रो मे यदि एकाध बात ही कल्पित होती और इनके आधार पर ऊपर कथित समाज-घातक सिद्धान्त न फैलते तो इन "बूझबुजागरी" कल्पनाओं को सत्य की कसौटी पर कसने की कोई आवश्यकता ही अनुभव नहीं होती, मगर जब कि इनमे असत्य, अस्वाभाविक और असम्भव प्रतीत होनेवाली बातें हजारों की संख्या में हैं (जिन्हें यदि इस प्रकार लेखो द्वारा बताई जाये तो बीसों वर्षो तक लेख चालू रखने पड़ें) इनके रहस्य को प्रकाश में लाना नितान्त आवश्यक है।

'तेरापंथी युवक संघ का बुलेटिन नं० २' जून सन् १६४४ ई०

जैन सूत्रों में मांस का विधान

पिछले किसी एक लेख मे मैंने यह कहा था कि एक ही बात के विषय मे एक सूत्र मे कुछ ही लिखा हुआ है तो दूसरे मे कुछ ही। यहा तक है कि परस्पर एक दूसरे के विरुद्ध तक लिखा हुआ है। इस प्रकार की परस्पर बे-मेल बातें जेन शास्त्रो मे प्राय सैंकड़ों की संख्या मे हैं और असत्य, अस्वाभाविक और असम्भव प्रतीत होने वाली बातो के विषय मे तो यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि वे हजारों की सख्या मे हैं। ऐसी अवस्था मे शास्त्रों को भगवान के वचन कह कर अक्षर-अक्षर सत्य कहना सर्वज्ञता के नाम का उपहास करना है। वर्तमान जैन सूत्रों की त्रुटि पूर्ण रचना और सन्दिग्ध वचनो के कारण जेन धर्मानुयाइयो के एक ही सूत्रो को मानते हुव अनेक फिरके होते गये और होते जा रहे हैं। विक्रम सम्वत ५२३ के लगभग इन सूत्रों की रचना हुई थी। उस समय से आज तक इन सूत्र वचनों का भिन्न २ अर्थ निकलने के आधार पर सैकडो नये नये मत चालू होते रहे हैं और परस्पर एक दूसरे से इन वचनो को लेकर लडते झगडते रहे हैं। सूत्रो की रचना के कुछ ही समय पश्चात् बडगच्छ की स्थापना हुई इसके पश्चात् विक्रम संवत ११३६ मे षटकल्याणक मत १२०४ मे खरतर गच्छ १२१३ मे आचलिक मत १२३६ मे सार्द्ध पौर्णिमेयक मत १२५० मे आगमिक मत

१२८५ मे तपागच्छ १५३१ मे लुका गच्छ १५६२ मे कटुक मत १५७० में विजागच्छ १५७२ मे पाय चन्द्रसूरि गच्छ १७०६ मे लवजी का मत (जिसके स्थानकवासी हुवे है) और १८१६ मे तेरापंथ मत चालू हुवे। इनके अतिरिक्त और भी अनेक मत चालू हुवे हैं। आज भी हम बराबर देख रहे है कि सूत्रो के इन सन्दिग्ध वचनो मे उलझकर प्रति वर्ष सकडो साधु अपने २ गच्छ और मतो से निकल पडते है और आवारा भटक कर अपनी जिन्दगी बरबाद करते हुवे मर मिटते है। यह है इन सूत्रों के सन्दिग्ध वचनो का कटु फल। इन ही सन्दिग्ध वचनों के आधार पर भगवान महावीर के सपूत (ये साधु) फिरका बन्दी मे पड कर परस्पर लड रहे हैं। एक दूसरे को बुरा बताने मे तनिक भी नहीं अघाते। श्वेताम्बर जैन के इस समय मुख्य मुख्य तीन फिरके हैं। किसी के पास चले जाइये बाकी के दो फिरको की निन्दा करते देख कर आप ऊब जायंगे। इन सन्दिग्ध वचनो के आधार पर कोई भगवान की प्रतिमा को सन्मान करना दोष बता रहा है तो कोई माता पिता, पति की सेवा सुश्रूषा करना, विपत्ती मे पडे हुवे की सहायता करना, शिक्षा प्रचार आदि ससार के जितने भी उपकार के सत्कार्य हैं सब को निस्वार्थ भाव से करने पर भी एकान्त पाप बता रहा है। इसका कारण किसी व्यक्ति विशेष का निज स्वार्थ नहीं है और न किसी की द्वेष बुद्धि से ऐसा हो रहा है परन्तु इसका कारण एक मात्र इन सूत्रो के सन्दिग्ध वचन और इनकी त्रुटि

पूर्ण रचना मात्र है। सूत्रों की त्रुटि पूर्ण रचना के विषय में भिन्न भिन्न नुकते (Points) को लेकर यदि श्वेताम्बर सम्प्रदाय के फिरकों की मान्यता मे जो परस्पर अन्तर है, उसे स्पष्ट किया जाय तो इस छोटे से लेख मे सम्भव नहीं, इसके लिये तो एक स्वतन्त्र पुस्तक की रचना करनी पड़ेगी परन्तु त्रुटि पूर्ण रचना के विषय की कुछ आम (General) बातें बिचारने योग्य हैं।

भगवती सूत्र को बहुत बड़ा दिखाने के लिये उसमे ३६००० प्रश्नों का कथन किया गया है। एक ही प्रश्न को केवल प्रश्नों की संख्या बढाने के विचार से बार २ कई स्थानो मे रखा गया है और आप देखेंगे कि सूत्रों की संख्या और उनका कलेवर बढाने के लिये ठीक वैसे ही बहुत से बल्कि वे के वे ही प्रशन जो भगवती मे हैं वही जीवाभिगम मे मौजूद है वही पन्नवणा मे और वही जम्बूद्वीप पन्नति आदि मे। इस प्रकार परस्पर एक दूसरे सूत्र में वे के वे ही प्रश्न जोड-जाड कर सूत्रो की संख्या और कलेवर बढाने का प्रयास किया गया है। सूत्रो को देखने वाले भली प्रकार जानते हैं कि सब सूत्रों मे पुनरावृति भरी पडी है। सब स्थानों मे यह नजर आ रहा है मानो केवल कलेवर बढाने की भावना से एक ही बात का बराबर अनेक बार प्रयोग किया गया है।

संसार के सामने Volume बढा कर दिखाने की भावना उस समय और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है जिस समय हम

चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति पर दृष्टि डालते हैं। चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति दोनों भिन्न २ दो सूत्र माने गये हैं। बारह उपाङ्गो मे ज्ञाता धर्म कथाग का एक छट्ठा उपाङ्ग और दूसरा सातवा उपाग माना गया है। परन्तु आप इन सूत्रों को पढ जाइये दोनों सूत्र अक्षरस' एक ही हैं। इन दोनों मे कुछ भी भिन्नता नहीं फिर इनका भिन्न २ दो नाम और एक को छट्ठा उपाग और दूसरे को सातवां उपाग किस लिये बताया गया है इसका कारण समझ मे नहीं आता।

इन सूत्रो की बातें प्रत्यक्ष और गणना (Mathematically) में असत्य प्रमाणित हो रही हैं यह एक जुदी बात है। परन्तु सवाल तो यह है कि जब कि यह दोनो सूत्र हरफ ब हरफ एक ही है तो ससार के सामने दो बता कर दिखाने का भी तो कोई मकसद होना चाहिये।

दृष्टिवाद नाम का बारहवा अंग मय १४ पूर्व और कई ये सूत्र जिनके पठन मात्र से सेवा मे देवता हाजिर होना अनिवार्य था का होना बता कर साथ ही उनका विच्छेद जाना या लोप हो जाना कहा गया है। चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति दोना सूत्र हरफ ब हरफ एक होते भी दो बताने के कथन पर गौर करने से इस कथन पर पूरा शक पैदा हो जाता है कि आया यह चवदह पूर्व और पठन मात्र से सेवा मे देव हाजिर करने वाले ग्रन्थ थे या सख्या और महत्व बढाने के लिये कोरी कल्पना मात्र ही है।

यदि यह चवदह पूर्व और पठन मात्र से सेवा मे देव हाजिर करने वाले सूत्र वास्तव मे ही होते तो ऐसे उपयोगी रत्नों को लोप होने क्यों देते जबकि भगवान महावीर के समय के ताड-पत्रों पर लिखे हुवे अनेक ग्रंथ मिल रहे है। फिर इनके लिये ही न लिखने की कौन सी कानूनी निषेधाज्ञा लाग पडती थी। विचारने की बात है कि लिखने की कला रहते हुवे ऐसा कौन ना समझ और अकर्मण्य होगा जो ऐसी उपयोगी वस्तु को केवल लिखने के आलस्य से लोप होने देगा।

दन्त कथा है कि आचार्य महाराज के कान मे सूठ का टुकडा रखा हुवा था जो विस्मृत हो गया और प्रतिक्रमण की पलेवना के समय उस सूठ के टुकडे को कान मे भूला जान कर विचार किया कि पंचम काल के प्रभाव से दिन प्रति दिन स्मरण शक्ति बिसरती जा रही है अत भगवान के ज्ञान को लिपिबद्ध कर देना आवश्यक समझ कर सूत्र लिखवाये। जो लोप हो गया उनके लिये भी यही कथन है कि एक साथ लोप नहीं हुआ था परन्तु सनै सनैः लोप हुवा था। पहले १४ पूर्वधर थे पश्चात् १० पूर्वधर हुवे। होते होते जिस समय सूत्र लिखे गये उस समय केवल आध (½) पूर्व का ज्ञान शेष रह गया था। आश्चर्य तो इस बात का है कि १४ पूर्व मे से किंचित यानी आधा पूर्व घट कर जिस समय १३½ पूर्व रहे उसी समय आलस्य त्याग कर चेत जाना चाहिये था और बचे हुवे १३½ पूर्वों को और जिनके पठन मात्र से देवता हाजिर हो—ऐसे चमत्कार पूर्ण सूत्रों

को तो लिपि बद्ध करा देना चाहिये था, जो नहीं किया , वरना इतनी बडी सम्पदा (।) से संसार वञ्चित नहीं रहता। भगवान महावीर निर्वाण के ९८० वर्ष प्रश्चात वर्तमान सूत्र लिखे गये। यद्यपि असल (Original) प्रतियो का आज कहीं पता तक नहीं है परन्तु लिख दिये जाने से यह तो हुवा कि धर्म ग्रन्थों पर मुसलमानी जमाने जैसा खतरनाक समय गुजरने पर भी आज लगभग १४७५ वर्ष व्यतीत होगये परन्तु सूत्र ज्यो के त्यो उपलब्ध है। क्या इतने बडे ज्ञानी पूर्वधरो के ज्ञान मे यह बात नहीं आई कि लिखवा देने का ऐसा शुभ फल होता है। उन्हे चाहिये था कि ऐसे उपयोगी सूत्रो को लिखवाकर भगवान के ज्ञान को स्थायी कर देते। चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति दोनो सूत्र अक्षरस एक है सो तो विचारणीय बात है ही, परन्तु इनमे की एक बात बडी ही आश्चर्यजनक नजर आ रही है। दसम प्राभृत के सतरहव प्रति प्राभृत मे भिन्न भिन्न नक्षत्रो मे भिन्न भिन्न प्रकारके भोजन करके गमन करे तो कार्य की सिद्धि का होना बतलाया है। इस भोजन विधान मे ९ जगह भिन्न भिन्न प्रकार क मासो का भोजन करके जाने पर कार्य सिद्धि का कथन है। यहा हम सूत्र के मूल पाठ को ही दे देते है।

ता कहते भोयण आहितेति वदज्जा ? ता एत सिणं अट्ठावीसाए नक्खत्ताणं कत्तियाहिं दहिणा भोच्चा कज्ज साहेति ॥ १ ॥
रोहिणीहिं वसभमंस भोच्चा कज्ज साहेति ॥ २ ॥

मिगसिरेण मिगमंस भोच्चा कज्जं साहेति ॥ ३ ॥
अद्याहिं णवणीएहिं भोच्चा कज्जं साहेति ॥ ४ ॥
पुणवसुणा वरणं भोच्चा ॥ ५ ॥
पुसे खिरेण भोच्चा ॥ ६ ॥
असिलेसाहिं दीवग मंसेणं भोच्चा ॥ ७ ॥
महाहिं कसारि भोच्चा ॥ ८ ॥
पुव्वा फग्गुणिहिं मेढ़ग मसेणं भोच्चा ॥ ९ ॥
उत्तरा फग्गुणिहिं णक्खि मंसेण भोच्चा ॥ १० ॥
हत्थेण वत्थाणियगं भोच्चा ॥ ११ ॥
चित्ताहिं मुगसूपणं भोच्चा ॥ १२ ॥
सातिणा फलाहिं भोच्चा ॥ १३ ॥
विसाहाहिं आतिसिया भोच्चा ॥ १४ ॥
अणुराहाहिं मासाकुरेण भोच्चा ॥ १५ ॥
जेठाहिं कीलट्ठिएण भोच्चा ॥ १६ ॥
मुलेण मुलग सएण भोच्चा ॥ १७ ॥
पुव्वासाढाहिं आमलग सारिरेण भोच्चा ॥ १८ ॥
उत्तरापाढाहिं विल्लेहि भोच्चा ॥ १९ ॥
अभियेण पुप्फेति भोच्चा ॥ २० ॥
सवणेण खीरेण भोच्चा ॥ २१ ॥
धणिट्ठाहिं जूसेण भोच्चा ॥ २२ ॥
सय भिसया तुम्बरातो भोच्चा ॥ २३ ॥
पुव्वा भद्दवयाहिं कारियएहिं भोच्चा ॥ २४ ॥

उत्तरा भद्दवयाहि वराहमंसं भोच्चा ॥ २५ ॥
रेवतिहिं जलयरमंसं भोच्चा कज्ज साहेति ॥ २६ ॥
अस्सिणिहिं तित्तरमंसं भोच्चा ।
कज्जं साहति अहवा वट्टकमंस भोच्चा ॥ २७ ॥
भरणीहि तिल तन्दुलय भोचा कज्जं साहेति ।
इति दसमस्स सत्तरमं पहुडं सम्मत ॥

सूत्र क उपर्युक्त मूल पाठ मे ६ स्थानो मे भिन्न भिन्न मासो के भोजन करके यात्रा करने पर कार्य सिद्धि का कथन है। रोहिणी नक्षत्र मे वृषभ मास, मृगसिरा मे मृग का मास, अशलेषा मे चित्रक मृग का मास, पूर्वाफालगुणी मे मींढे का मास, उत्तराफालगुणी मे नखयुक्त पशु का मास उत्तराभाद्रपद मे सूअर का मास, रेवती मे जलचर यानी मच्छादि का मांस और अश्विनी मे तीतर का मास अथवा वतक के मांस का भोजन का कथन है। श्री गौतम स्वामी के प्रश्न के उत्तर में भगवान महावीर ने यह फरमाया है। समझ मे नहीं आता कि जैन धर्म के प्रवर्त्तक, अहिसा के अवतार, जिन भगवान महावीर ने जनसमुदाय को सुक्ष्मातिसुक्ष्म अहिंसा पालन करने पर अत्यधिक जोर दिया है उन्होंने इस प्रकार का कथन किस आधार पर फरमाया है। यदि यह कार्य सिद्धि इस प्रकार वास्तव मे होती तोभी यह बहाना निकल सकता था कि वस्तु स्थिति जैसी होती है वैसा कथन सर्वज्ञ करते है परन्तु बात ऐसी नहीं है। किसी मास या धान्यादि वस्तु विशेष का

भोजन करके गमन करने पर ही यदि कार्य की सिद्धि हो जाती होती तो आजतक किसी भी व्यक्ति का कोई भी कार्य सिद्धि होने से वाकी नहीं रहता। आयुर्वेद की तरह यदि इन मासो के भोजन से रोग विशेष पर आरोग्य होने का कथन होता तो वस्तु स्वभाव के आधार पर कथंचित माना भी जा सकता था परन्तु कार्य सिद्धि का कथन सर्वथा असत्य एवम् अयुक्त है। वास्तव मे इन सूत्रों के रचयिताओं ने रचना करने मे इतनी अधिक त्रुटिया रखदी हैं कि जिसका परिणम जैनत्व के लिये भयंकर सिद्ध हो रहा है। जैन विद्वानों का इस समय परम कर्त्तव्य है कि सूत्रों के संदिग्ध स्थलों को स्पष्ट करके इनके आधार पर प्रतिदिन बढ़ने वाले नाना फिरकों को एक सूत्र मे बाधने का प्रयास करे।

'तेरापंथी युवक संघ का बुलेटिन नं० ३' अक्टूबर सन् १९४४ ई०

मांस शब्द के अर्थ पर विचार

तेरापंथी युवक संघ, लाडनू द्वारा प्रकाशित बुलेटिन (पत्रक) नम्बर २ में 'शास्त्रों की बातें' शीर्षक मैंने एक लेख दिया था जिसमें वर्त्तमान जैन सूत्रों की त्रुटिपूर्ण रचना और सन्दिग्ध वचनों के कारण, सभी श्वेताम्बर जैन सम्प्रदायों में एक ही शास्त्रों को मानते हुये परस्पर होने वाले विरोध और वमनस्य से जैनत्व का जो प्रति दिन ह्रास हो रहा है उस पर प्रकाश डाला था। और उसी लेख में सूर्यप्रज्ञप्ति तथा चन्द्रप्रज्ञप्ति दोनों सूत्र हरफ ब हरफ एक होते हुवे भी भिन्न भिन्न माने जाने के विषय में लिखते समय प्रसङ्ग वशात् उनमें के दसवें प्राभृत के सतरहवें प्रतिप्राभृत में भिन्न भिन्न नक्षत्रों में भिन्न भिन्न प्रकार के मांस भोजन करके यात्रा करने पर कार्य सिद्धि होने के कथन पर आश्चर्य प्रकट किया था। कारण अहिंसा प्रधान कहलाने वाले जैन धर्म के शास्त्रों में इस प्रकार मांस भोजन के कथन का होना अवश्य आश्चर्य की बात है। मुनि समाज ने इस विषय पर समालोचना करते हुवे यह फरमाया कि शास्त्रों में मांस भोजन के सम्बन्ध का जो कथन है वह मांस नहीं है परन्तु वनस्पति विशेष के नाम हैं। बड़ी प्रसन्नता की बात होगी यदि जैन शास्त्रों में मांस भोजन के विषय का जिन जिन स्थानों में प्रसंग

आया है वे सब मिथ्या प्रमाणित हो जायें, परन्तु शास्त्रों की रचना करने में शास्त्रकारों ने ऐसी त्रुटियां रख दी हैं अथवा रचना के पश्चात् ऐसे प्रक्षेप हो गये हैं कि जिनका समाधान या सुधार हो सकना असम्भव के लगभग है। एक बात के लिये एक स्थान में कुछ ही लिखा हुआ है तो दूसरे स्थान में उससे विरुद्ध लिखा हुआ है। इसी का यह परिणाम है कि एक ही सूत्रों को मानते हुए मानने वालों में परस्पर विरोध पड़ रहा है और एक दूसरे को सब मिथ्यात्वी बता रहे हैं। विवादास्पद विषयों का सन्तोषजनक निर्णय आज तक नहीं हो सका और जब तक इन शास्त्रों की अक्षर अक्षर सत्यता का विश्वास हृदय से नहीं हट जायगा भविष्य में भी निर्णय हो सकने की आशा करना दुराशा मात्र है।

जैन शास्त्रों में मांस भोजन के सम्बन्ध में सूर्यप्रज्ञप्ति चन्द्रप्रज्ञप्ति के अतिरिक्त आये हुये कुछ प्रसंग पाठकों के विचारार्थ नीचे लिख कर उन पर विवेचन करूंगा जिससे पाठक अपने निर्णय करने का प्रयत्न कर सकें।

भगवती सूत्र के १५ वें शतक में गोसालक के विषय का वर्णन है। गोसालक ने भगवान महावीर पर (भस्म करने के लिये) तेजो लेश्या डाली। तेजो लेश्या ने भगवान पर पूरा असर नहीं किया परन्तु उससे उनके शरीर में विपुल रोग होकर पित्तज्वर, पेचिश और दाह उत्पन्न हो गया। इस रोग को उपशान्त करने के लिये भगवान ने अपने शिष्य सिंह नामक

साधु को बुलाकर कहा कि तुम मिढीय ग्राम मे रेवती गाथापत्नि के घर जाओ। उसने मेरे लिये दो कपोत (कबूतर) शरीर बनाये है उन कपोत शरीरों को मत लाना और अन्य के लिये-मार्जार के लिये कुक्कुड मांस बनाया है उसे मेरे लिये ले आना। भगवान की आज्ञा के अनुसार सिंह अणगार उस रेवती गाथा पत्नि के घर गया और मार्जार के लिये बनाये हुए उस कुक्कुड मांस को लाकर भगवान को दिया जिसको खाकर भगवान ने अपना रोग उपशान्त किया।

भगवती सूत्र का वह मूल पाठ इस प्रकार है। तं गच्छहणं तुम सीहा मिढियगाम णयरं रेवतीए गाहावइणीए गिहं, तत्थणं रेवतीए गाहावइए मम अट्ठाए दुवे कवोतसरीरा उवक्खडिया तेहिंणो अट्ठो अत्थि। से अणे परियासिए मज्जार कडए कुक्कुड मंसए तमाहाराहि, तेणं अट्ठो।

भावार्थ—इसलिये हे सिंह मुनि! मिढिय गाम नामक नगर मे रेवती गाथापत्नि के घर तू जा। उसने मेरे लिये दो कपोत शरीर पकाये है जिससे कुछ प्रयोजन नहीं, किन्तु उसके यहां अपनी बिल्ली के लिये बनाया हुआ कुक्कुड मांस रखा है वह मेरे लिये ले आना उस से काम है।

और कुक्कुड मास को कोळा (कुष्मान्ड) की गिरी तथा मार्जार शब्द को वायु रोग विशेष बतला कर समाधान किया है।

प्राचीन कोष ग्रन्थों मे इन शब्दो को—कपोत को कबूतर, कुक्कुड़ को मुर्गा और मार्जार को बिल्ली लिखा हुआ है। जिन आचार्यों ने इन शब्दों को वनस्पति वर्ग मे लेकर कपोत शरीर को बिजोराफल, कुक्कुड मास को कोले (कुष्माण्ड) की गिरी और मार्जार को वायु रोग विशेष बताने का प्रयत्न किया है उनही के शब्दों को लेकर जर्मनी के डाक्टर हरमन जेकोबी को यह समझाया गया था कि यह शब्द वनस्पति विशेष के लिये आये हुए हैं। जिन आचार्यों ने शास्त्रो मे आये हुए ऐसे निकृष्ट शब्दों पर परदा डालने का प्रयत्न किया है उन्होंने बुरा नहीं किया बल्कि प्रशंसनीय कार्य ही किया है। कारण कम से कम उनका आधार लेकर इन शब्दो से उत्पन्न होने वाली बुराइयों से तो बचा जा सकता है। उन आचार्यों को चाहिये था कि शास्त्रों मे आये हुए ऐसे शब्दों को उन स्थानों से सर्वथा हटा देते जिस प्रकार ४५ सूत्रो मे से १३ सूत्रों को हटा कर शेष ३२ सूत्रों को ही मान्य रखा गया है। सब से बडी विचारने की बात तो यह है कि क्या बिजोरा और कुष्माण्ड, (कोला) फलों का नाम उस समय भारतवर्ष मे प्रचलित नहीं थे अथवा बिजोरे को कपोत शरीर और कुष्माण्ड (कोले) को कुक्कुड मास ही कहा जाता था। इन ही शास्त्रों मे बिज़ोरे का नाम माउलिंग या बिजपुर और

कोले का नाम कुष्माण्ड कहा हुआ मिल रहा है फिर इसी स्थल मे बिजोरे को कपोत शरीर और कोले को कुक्कुड मांस कहने की कौन सी आवश्यकता थी यह विचार ने की बात है।

आचारांग सूत्र के कई स्थानो मे ऐसे पाठ आते है जिनमे मुनियो के भोजन व्यवहार के साथ मद्यं वा, मासवा, मच्छवा शब्दो का प्रयोग हुवा है जैसे- आचारांग सूत्र के १० वे अध्ययन के चौथे उद्देश मे इस प्रकार है—

"सति तत्थेपतियस्स भिक्खुस्स पुरे संथुया वा पच्छासंथुया वा परिवसति, तंजहा गाहावतीवा, गाहावतीगीओवा, गाहावति-पुत्रवा, गाहावतीधुयाओवा, गाहावती सुहाओवा, धाईओवा, दासीवा दासोओवा, कम्मकरावा, कम्मकरीओ वा तहप्पगाराई कुलाई पुरेसंथुयाणी वा पच्छसंथुयाणि वा पुव्वामेव भिक्खा-यरियाए अणुपविसिस्सामि अविय इत्थ लभिस्सामि, पिंडवा, लोयवा खीरवा दधिवा नवणीयवा घय वा, गुडवा, तेल्लवा, महूवा, मज्जवा, मासवा, सकुलिवा, फाणियवा पूयवा सिहरि-णिवा, त पुव्वामेव भच्चा पेच्चा, पडिगाह संलिहिय सपमज्जिय, ततोपच्छा, भिक्खुहिं सद्धिं गाहवातिकुल पिंडवाय पडियाए पडिमिस्सामि निक्खमिस्सामिवा। माइट्ठाण फासेणो एवं करेज्जा। सेतत्थ भिक्खुहिं सद्धिं कालेण, अणुपविसित्ता तत्थियरेहिं कुलेहिं सामुदाणियं एसिय, वेसिय पिंडवाय पडिगाहेत्ता आहार आहारेज्जा।

भावार्थः—किसी गाव मे किसी मुनि का अपने तथा अपनी ससुराल के गृहस्थ पुरुष, गृहस्थ स्त्री, पुत्र, पुत्री, पुत्रवधू, धाय, नौकर नौकाराणी सेवक सेविका रहते हों, उस गाव मे जाते हुए वह मुनि ऐसा विचार करे कि मैं एक दफा अन्य सब साधुओं से पहिले अपने रिस्तेदारों मे भिक्षा के लिये जाऊँगा, और मुझे वहा अन्न, पान, दूध, दही मक्खन घी, गुड, तेल, मधु, (शहद) मद्य (शराब) मास, तिलपापड़ी गुड का पानी, बून्दी या श्रीखन्ड मिलेगा—उसे मैं सब से पहले खाकर अपने पात्र साफ करके पीछे फिर दूसरे मुनियो के साथ गृहस्थों के घर भिक्षा लेने जाऊँगा (यदि वह मुनि ऐसा करे) तो मुनि के लिये यह दोष की बात है। इसलिये मुनि को ऐसा नहीं करना चाहिये। किन्तु अन्य मुनियो के साथ समय पर अलग अलग कुलों मे भिक्षा के लिये जाकर मिला हुवा निर्दूषण आहार लेकर खाना चाहिये।

इस ऊपर कहे पाठ से शास्त्रकार का अभिप्राय स्पष्ट मालूम हो रहा है कि यदि कोई साधु अन्य साधुओ से छिपा कर अपने कुटुम्बीजनो आदि से एक दफा आहारादि लेकर उसे खा लेवे पश्चात् पात्र साफ करके दूसरी दफा अन्य साधुओं के साथ जाकर फिर आहार लाकर खाले तो ऐसा करना साधु के लिये दोष युक्त बात है। कारण प्रथम तो अन्य साधुओं से छिपा कर अकेला खाना दोष की बात है और दूसरे बिना कारण दो बार भिक्षा लाना भी दोष की बात है। अकेला न जाकर यदि साधु

अन्य साधुओं के साथ जाकर दूध, दही, मद्य, मांस आदि पाठ मे आई हुई कोई भी वस्तु लाकर अपने ही हिस्से के अनुसार खावे तो शास्त्रकार के अभिप्राय के अनुसार कोई दोष प्रमाणित नहीं होता। शास्त्रकार की दृष्टि मे इस स्थान पर मद्य मास साधु के लिये त्याज्य वस्तु होती तो पाठ मे इन शब्दो का प्रयोग ही नहीं होता।

टीकाकार श्री शिलंगाचार्य फरमा रहे है कि किसी समय कोई साधु अतिप्रमादी और लोलुपी होकर मद्य मांस को खाना चाहे उसके लिये यह उल्लेख है। टीकाकार ने इस पाठ मे आये हुए मद्य और मास शब्दो को वनस्पति वगैरा कहने का प्रयत्न नहीं किया। कारण मद्य के साथ मास का शब्द होने से वनस्पति पक्ष मे लेकर इस प्रकार कहने की कोई गुञ्जाइश नहीं देखी। केवल साधु को अतिप्रमादी और लोलुपी होने का कह कर शुद्ध साधु के साथ मद्य मास के व्यवहार का सम्बन्ध तोड़ने का प्रयत्न किया है परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं कहा कि जो साधु प्रमाद वस मद्य मास का प्रयोग करता है वह शुद्ध साधु नहीं रह सकता। यदि ऐसे अतिप्रमादी साधु के लिये यह कह देते कि इस प्रकार मद्य मास का प्रयोग करने वाला मुनि साधु नहीं रह सकता तो इस पाठ मे आये हुए मद्य मास के शब्दों के ऊपर उठने वाली शकाओ का अपने आप ही समाधान हो जाता। पाठ के अभिप्राय के अनुसार केवल मद्य मास के लिये साधु पर अतिप्रमादी और लोलुपीपन का आरोप करना बन नहीं

सकता। लोलुपीपन का आक्षेप यदि बन सकता है तो इस पाठ में आये हुए दूध, दही, मद्य, मास आदि सब पदार्थों के सम्बन्ध मे एकसा बन सकता है। केवल मद्य मास के लिये लोलुपीपन का आक्षेप लगाना मूल सूत्र के पाठ के अभिप्राय से विरुद्ध है।

आचाराग सूत्रके इसी १० वे अध्यन के ६ वे उद्देश मे भी एक पाठ है। जो इस प्रकार है—

"से भिक्खुवा जाव समाणे सेज्जं पुव्वं जाणेज्जा मंसं वा मच्छंवा भज्जिज्ज माणं प ए तेल्ल पूयय वा आए साए उबक्खडिज्जमाणं पेहाएणो खंद्ध खद्धणोउवसंकमित्तु ओमासेज्जा। णन्नत्थ गिलाणणीसाए।"

भावार्थ—मुनि किसी मनुष्य को मांस अथवा मछली भूजता हुआ देख कर या मेहमान के लिये तेल मे तलती हुई पूडिया देख कर उनके लेने के लिये जल्दी दौडकर उन चीजो की याचना नहीं करे। यदि किसी रोगी (बीमार) मुनि के लिये उन चीजो की आवश्यकता हो तो बात अलग है।

इस पाठ मे शास्त्रकार का अभिप्राय साफ है कि साधु लोभाशक्त बना हुआ मास मछली और तेल के पुडो की याचना करने के लिये जल्दी जल्दी दौडता हुआ न जावे। रोगी साधु के लिये शास्त्रकार ने जल्दी जल्दी जाने की छूट दी है। यदि साधु लोभाशक्त न बना हुवा स्वाभाविक गति से चलता हुवा

जावे तो शास्त्रकार के अभिप्राय के अनुसार जाकर मांस मछली या तेल के पुड़ों की याचना कर सकता है। रोगी साधु के लिये तो जल्दी जल्दी जाने का भी निषेध नहीं किया है। इस पाठ के लिये टीकाकार का मत है कि साधु की वैयावृत के लिये साधु मांस और मछली गृहस्थ के घर से याचना कर सकता है।

आचारांग सूत्र के १० वें अध्ययन के १० वें उद्देश में एक पाठ है जो इस प्रकार है—

से भिक्खु वा सेज्जं पुण जाणेज्जा, बहु अट्ठियं मंसवा, मच्छंवा वट्ठकटगं अस्सिखलु पडिगाहितंसि अप्पेसिया भोयणजाए बहुउज्झिय धम्मिए-तहप्पगारं बहुअट्ठियं मंस मच्छा बहुकटगं लाभे सतं जावणो पडिगाहेज्जा।

भावार्थ—बहुत अस्थियों, हड्डियों वाला मांस तथा बहुत कांटे वाली मछली को जिनके लेने में बहुत चीज छोड़नी पड़े और थोड़ी चीज काम में आवे तो मुनि को वह नहीं लेनी चाहिये।

इसी ऊपर के पाठ से लगता हुआ पाठ है जो इस प्रकार है—

से भिक्खू मांजाव समाणे सियाणं परो बहुअट्ठिएणा मंसेण, मच्छेण उवणिमन्तेज्जा "आउसन्तो समणा, अभिकंखसि बहुअट्ठियं मंस पडिगाहेत्तए?" एयप्पगारं निग्घोसं सोचा णिसम्म से पुव्वामेव आलोएज्जा "आउसोत्तिवा बहिणित्ति वाणो खलु मे कप्पई से बहु-अट्ठियं मंसं पडिगाहित्तए।

अभिक्खंसिमेदाऊं, जावइयं तावइयं पोग्गलं दलयाहि मा अट्ठियाई" से सेवं वदन्तस्स परो आभहदुअन्तो पडिग-हगंसि वहअट्ठियं मंसं परिभाएता णिहटटू-दलएज्जा, तहप्पगारं पडिगाहगं परिहत्थंसि परिमायसि वा अफामुयं अणेसणिज्जं लाभे सन्ते जावणो पडिगाहेज्जा। मे आहच्च पडिगाहिए सिया तणो "ही" तिवएज्जा। णो 'अणहि' तिवइज्जा। से त्त मायाए एगत मवक्कमेज्जा, अहे आरामं सिवा अहे अवस्सयंसि वा अप्प डिए जाव अप्पमताणाए मंसगं मच्छग भेज्जा अट्ठियाइ कंटए गहापसे त मायार एगत मवक्क मे भेज्जा अहेज्झामंथडिलंम्मिवा जाव पमज्जिय परिवेट्ठज्जा।"

भावार्थ —कदाचित मुनि को कोई मनुष्य निमन्त्रण करके कहे कि हे आयुष्मन् मुने। तुम बहुत हड्डियो वाला मास चाहते हो? तो मुनि यह वाक्य सुन कर उसको उत्तर दे कि हे आयुष्मन् या हे बहिन। मुझे बहुत हड्डियो वाला मास नहीं चाहिये यदि तुम वह मास देना चाहते हो तो जो भीतर की खाने योग्य चीज है वह मुझे दे दो, हड्डिया मत दो। ऐसा कहते हुए भी गृहस्थ यदि बहुत हड्डियोवाला मास देने के लिये ले आवे तो मुनि उसको उसके हाथ या पात्र (वर्तन) मे ही रहने दे, लेवे नहीं। यदि कदाचित वह गृहस्थ उस बहुत हड्डियोवाले मास को मुनि के पात्र मे झट डाल देवे तो मुनि गृहस्थ को कुछ न कहे किन्तु ले जाकर एकान्त स्थान मे पहुँच कर जीव जन्तु रहित बाग या उपाश्रय

के भीतर बैठ कर उस मांस या मछली को खा लेवे और उस मांस मछली के कांटे तथा हड्डियों को निर्जीव स्थान में रजोहरण से साफ करके परठ दे।

इस पाठ पर टीका करते हुए टीकाकार फरमाते है कि अनिवार्य कारणों पर अपवाद मार्ग में मत्स्य मांस का साधु वाह्य परिभोग कर सकता है।

ऊपर के पाठ में स्पष्ट कहा है कि बाग या उपाश्रय के भीतर बैठकर साधु उस मांस व मछली को खा लेवे। ऐसी दशा में टीकाकार का यह फरमाना कि अनिवार्य कारणों पर अपवाद मार्ग में मांस मछली का बाह्य प्रयोग करने का कहा है, सर्वथा खंडित हो जाता है। पाठ में खाने का शब्द साफ सीधा लिखा हुआ है और टीकाकार वाह्य प्रयोग का कह रहे हैं यह कहां तक युक्ति संगत है पाठक स्वयम् विचार लें।

उपरके इन सब पाठों में टीकाकार ने मद्य, मंसा, मच्छवा शब्दों के अर्थ शराब, मांस, मछली मानते हुए ही साधु के भोजन व्यवहारों में इनको किसी तरह से टाले जा सकने का प्रयत्न किया है। परन्तु वनस्पति नहीं कहा। टीकाकार श्री शिलंगाचार्य कोई साधारण कोटि के साधु नहीं थे उन्होंने ११ अंग सूत्रों की टीका की थी जिनमें से वर्त्तमान में २ की टीका उपलब्ध है और बाकी की नहीं मिल रही है। इतने बड़े प्रगाढ़ विद्वान और जैनाचार्य पर यह इलजाम तो कतई नहीं लगाया जा सकता कि इन पाठों में

आये हुए मद्यंवा मंसंवा मच्छंवा शब्दों का वनस्पति विशेष अर्थ होते हुए भी उन्होंने जान बूझ कर मद्य मासादि भोजन के लोभ से इन शब्दों के अर्थ को मद्य मास और मछली ही कायम रखने का प्रयत्न किया हो। साधु जीवन मे न उन्होंने कभी मांस खाया और न वे मद्य, मास खाने के पक्षपाती थे, वल्कि सारे जीवन मे मद्य मांस का निषेध करते हुए जैन धर्म और जैन साहित्य की सेवा की है। शिथिलाचार का दोष लगा कर मद्य मास भोजन के साथ उनके शिथिलाचार का सम्बन्ध जोडना नितान्त भूल की बात है। यह बात सम्भव है कि उन्होंने अपने हृदय के भाव जैसे बने टीका करते समय सरलतया वैसे ही लिख दिये हों। एक तरफ तो उनको सूत्रो मे आये हुए शब्दों को तोड मरोड कर बदल देने अथवा उठा देने से अनन्त संसार परिभ्रमण का भय था (कारण शास्त्रकारो का यही विधान है) और दूसरी तरफ समय ने इतना अधिक परिवर्त्तन कर दिया था कि मद्य, मास और मछली का व्यवहार जैन साधु तो क्या परन्तु श्रावक तक के लिये महा निषेध की वस्तु वन गई थी। ऐसी अवस्था मेटीकाकार को ऐसे पाठों के सम्बन्ध मे सिवाय इस प्रकार के कथन कर सकने के अन्य कोई उपाय ही नहीं था। खयाल होता है कि उस समय शायद मास भोजन के व्यवहार के खिलाफ श्रावक समाज मे इतनी सख्त मनाही की पावन्दी नहीं थी। अन्यथा कई श्रावकों के जीवन मे मास भोजन का जो सम्बन्ध

देखने म आता है वह नहीं आता। जैसे श्री नेमीनाथ भगवान के विवाह के समय राजुल के पिता श्री उग्रसेन महाराज के घर पर भोजन सामग्री के लिये पशु पक्षियों को मारने के लिये एकत्रित किये जाने से अनुमान होता है। यदि श्रावक समाज मे मास भोजन के खिलाफ सख्त मनाही न हो तो मुनि समाज के लिये भी अनिवार्य कारणा मे पक हुवे मास को अचित्तअवस्था मे अचित्त समझ कर लिया जाना सम्भव हो सकता है। मद्य मांस का सेवन सर्वथा अनिष्ट कारक निन्दनीय एवम् दुर्गत का दाता है इसमे किसी प्रकार का सन्देह नहीं। शास्त्रों मे मास भोजन के निषेध मे अनेक पाठ आये है और कुछ पाठ ऐसे भी आये है जैसे ऊपर लिख आचारांग के पाठ है। शास्त्रोकारों को चाहिये था कि ऐसे पाठो को सन्दिग्ध नहीं रखते साफ तौर पर खुलासा करके लिखते परन्तु यहां तो उन्होंने त्रुटियां की है कि किसी सिद्धान्त को कायम करने मे उसके पक्ष को पूर्वापर पूरी तरह निभा न सके। रचना करने मे अनेक त्रुटियां कर दी। जिस बात के लिये किसी एक स्थान मे विधि कर दी है तो दूसरे म उसी के लिये निषेध कर दिया है। सर्वज्ञ प्रणीत शास्त्रो म इस प्रकार बेमेल बातो का होना सर्वथा आश्चर्य की बात है।

विचार प्रकट किये हैं वे इस प्रकार है—"ए मस नाम वनस्पति नो गिर दीसे छे। भगवती श० ८-३-९ पञ्चेन्द्री नो मास खाधा नरक कही छे। (१) तथा प्रश्न व्याकरण अ० १० साधु ने मास खाणो वर्ज्यो छे। (२) तेमाटे ए वनस्पति नो मास छै। पन्नवणा पद १ कुलिया ने अस्थि हाड कह्या, (३) तथा दशवैकालिक अ० ५ उ० १ गाथा ७३ कुलिया ने अस्थि हाड कह्या। इम कुलिया ने अस्थि हाड अनेक ठामे कह्या तेणे न्याय गिरने मास कहीजै-अने इहा वृत्तिकार रोग मिटावा मंसनो बाह्य परिभोग कह्यो अने एहनो अर्थ टब्बाकर कह्यु ते कहे छे—इहाँ वृतिकार लोक प्रसिद्ध मास मच्छादिक नो भाव बखाण्यो परन्तु सूत्र विरुद्ध भणी एह अर्थ इम न सम्भवै पछे वलि जिन मत ना जाण गीतार्थ प्रमाण करै ते प्रमाण। शास्त्र माही अस्थि शब्द कुलिया घणे ठामे कह्यो छे। पन्नवणा सूत्र माही वनस्पति ना अधिकारे एगटिया ते हरडे कहई बहु अट्ठिया ते दाड़िम कहई प्रभृति एवा शब्द छे वलि अस्थि शब्दे कुलिया बोल्या छै तो मास शब्द माहिली गिर सम्भवाये छै। एभणी ते वनस्पति विशेष मास मच्छ फलाव्या छे। इम चारित्रिया मे मास मच्छ उघाड़े भावी कारणे पिण आदरवा योग्य नहीं दीसै वली सूत्र मांहि साधु ने उत्सर्ग भाव कह्या छॅ। वृति मे अपवाद कह्यो छे तेणे विषै सूत्र नो अर्थ जिम उत्सर्ग छै तिमज मिलै।"

इस उपर के कथन मे श्री आचार्य महाराज के हृदय मे भी

इस मांस मच्छ शब्द के विषय में शंका बनी हुई थी-उन्हों ने स्पष्ट शब्दों में यह नहीं कहा कि मांस शब्द का अर्थ वनस्पति की गिरी ही होता है और इसका अमुक कोष ग्रन्थ या शास्त्रों में इस प्रकार प्रमाण है बल्कि वे कहते हैं कि—'ए मांस नाम वनस्पति नो गिर दीसे छे, अस्थि शब्द कुलिया बोल्या छे तो मांस शब्द माहिली गिर सम्भवाय छे कुलिया ने अस्थि हाड अनेक ठामे कह्या तेणे न्याय गिर ने मांस कहीजे माटे ए वनस्पति नो मांस छे।'

इस प्रकार दीसे छे, आदि शंका भरे शब्दों का व्यवहार करते हुए कहते हैं कि " जिन मत ना जाण गीतार्थ प्रमाण करे ते प्रमाण" यानी जैन धर्म के जानने वाले विद्वान जो प्रमाण करें वही प्रमाण मानना चाहिये।

ऊपर आये हुए वाक्यों से यह स्पष्ट प्रकाशित होता है कि उन्ह शास्त्रों में मांस शब्द का अर्थ मांस के सिवाय अन्य कोई भिन्न अर्थ नहीं मिला। इसलिये कुटियों (गुठली) को अस्थि कहने का न्याय बताते हुए किसी तरह से मांस को वनस्पति की गिर बना कर समाधान करने का प्रयत्न किया है।

(मत्स्य) नाम की भी कोई वनस्पति ही है। यदि मांस और मच्छ का वनस्पति फल विशेष में प्रयोग होता तो इस प्रकार के लोक प्रसिद्ध निकृष्ट अर्थ निकलने वाले शब्दों का खुलासा करते हुए सर्वज्ञ बता देते कि वनस्पति की गिर को भी मांस कहा जाता है और मच्छ नाम की भी वनस्पति होती है।

बुलेटिन नम्बर २ के गत लेख में सूर्यप्रज्ञप्ति चन्द्रप्रज्ञप्ति के भिन्न भिन्न नक्षत्रों के भोजन से कार्य सिद्धि के कथन में जो भिन्न भिन्न ६—१० मांसों के नाम आये हैं उनके विषय में यह कहना कि वनस्पति विशेष के नाम हैं किसी प्रकार से भी नहीं बन सकता। कारण विपाक सूत्र के दुःख विपाक के सातवें अध्ययन में अमरदत्त कुमार की कथा चली है। उस कथा में धन्वन्तरी वैद्य द्वारा रोगियों को भिन्न भिन्न मांसों के पथ्य खाने के उपदेश से तथा स्वयम् के मांस खाने के फल स्वरूप छट्ठे नरक में जाने का कथन आया है। सूर्यप्रज्ञप्ति चन्द्रप्रज्ञप्ति में आये हुए भिन्न भिन्न वसभमंस, मिगमंस, दीवगमंस, मेढगमंस, णक्खिमंस, वाराहमंस, जलयरमंस, तित्तरमंस, वट्टकमंस और विपाक सूत्र में आये हुए मांसों के नाम प्रायः एक ही हैं। इसलिये एक सूत्र में उन मांसों को मांस समझ लेना और दूसरे सूत्र में उन्हीं मांसों के नामों को वनस्पति विशेष समझ लेना यह तो अपनी समझ की स्वच्छन्दता है।

सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति मे टीकाकार ने सारे ग्रन्थ की टीका की ह परन्तु जिस स्थान मे इन मामो के भोजन का कथन ह केवल उसी स्थल की टीका करनी छोड दी और टब्बाकार ने भी ऐसा ही किया ह। केवल पहिले नक्षत्र कृतिका मे (मूल पाठ मे कह हुए दही के भोजन के अनुसार ही) दही का भोजन करके यात्रा करे तो कार्य सिद्धि होती है बाकी २७ नक्षत्रो क लिये यह कह दिया कि कृतिका की तरह इनके मूल पाठ मे जो लिखा ह वैसा ही समझना। टीकाकार और टब्बाकार का इस स्थान म मौन रहना साफ बता रहा है कि एस निकृष्ट विधान मे कलम चलाने की इनकी इच्छा नहीं हुई। शब्दो क अर्थ को बदलते ह तो ससार परिभ्रमण का भय है और नामो क मुताबिक रहत ह तो अनेक मामो के नाम लिखने पडते हैं जिसका परिणाम भारी हिंसा हो सकती ह।

मद्य, मास, मच्छ और कपोत शरीर, कुक्कुटमास तथा सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति आदि जिन जिन शास्त्रो मे जिस जिस स्थान मे ऐसे मद्य, मासादि शब्दो के साथ भोजन व्यवहारो का सम्बन्ध ह उन वाक्यो तथा पाठो क शब्दो को क्या नहीं उन स्थलो से सबथा हटा दिया जाता और उनके स्थान मे वनस्पति विशेष के शब्द रख दिये जाते? यह तो मानी हुई बात ह

सकता है क्योंकि यदि यह सर्वज्ञ प्रणीत होते तो इनमे असत्य, अस्वाभाविक और असम्भव प्रतीत होने वाली बाते सैकड़ों तथा हजारों की संख्या मे नहीं पाई जाती।

क्या यह इन शास्त्रों की त्रुटि पूर्ण रचनाओंका परिणाम नहीं है कि एक ही शास्त्रों को मानते हुए इन मे आये हुए वाक्यों तथा पाठों का भिन्न भिन्न अर्थ लगाया जा रहा है और उसी के कारण एक सम्प्रदाय दूसरे को मिथ्यात्वी बता रहा है तथा एक सम्प्रदाय लोकोपकारक संसार के कामो को निस्वार्थ भाव से करने पर भी एकान्त पाप बता रहा है और दूसरा सम्प्रदाय उन्हीं कामो को करने मे पुन्य तथा धर्म बता रहा है ?

शास्त्रों के रचने में जो त्रुटियां रही हैं उन्हीं का यह परिणाम है कि भिन्न भिन्न अर्थ लगाये जा रहे हैं अन्यथा क्या कारण है कि एक ही शास्त्रो को मानने वालो के उपदेश मे इस प्रकार का आकाश पाताल का अन्तर हो। इसमे तो कोई सन्देह ही नहीं कि जैन के साधु कंचन और कामिनी के सर्वथा सच्चे त्यागी हैं। उनके लिये यह तो दावे के साथ कहा जा सकता है कि वे किसी सांसारिक अथवा आर्थिक स्वार्थ के लिये शास्त्रों के इस प्रकार भिन्न भिन्न अर्थ नहीं कर रहे हैं फिर अर्थ करने मे इस प्रकार रात दिन का अन्तर किस लिये ? इसका एक मात्र कारण यही है कि शास्त्रो की रचना करने में इस प्रकार सन्दिग्ध शब्दों और वाक्यों का तथा पाठो का

प्रयोग हो गया है। इसलिये प्रत्येक सम्प्रदाय के धर्माचार्य महाराज तथा जैन धर्म के हितेच्छुओं से मेरी विनय पूर्वक नम्र प्रार्थना है कि इन सब शास्त्रों का प्रारम्भ से आखिर तक सब का संशोधन होना चाहिये और इन में के असत्य, अस्वाभाविक और असम्भव प्रमाणित होने वाले तथा मानव-हितों के विरुद्ध पड़ने वाले वाक्यों तथा पाठों को हटा देना चाहिये। केवल उन वचनों को रखना चाहिये जो मानव जीवन का निर्माण तथा कल्याण करने वाले हों।

उपसंहार

जैन-श्वेताम्बर शाखाके तीनों सम्प्रदायों के आचार्यों से वार्त्तालाप: शास्त्र-संशोधन की योजना।

अन्य प्राणियों की तरह मनुष्य भी अपने प्रारम्भिक कालमे समाज विहीन अवस्था मे रहा था। प्रकृति द्वारा मानव शरीर मे भाषा के विकास होने की सुविधा प्राप्त थी इसलिये एक दूसरे के अनुभव और विचारो के आदान-प्रदान से मनुष्य के ज्ञान की वृद्धि मे बहुत अधिक सहायता मिली। जीवन-संघर्ष मे होने वाले कष्टो को मिटाने का उसने बारबार उपाय सोचा और विचार किया कि एक दूसरे की सहायता और सहयोग से काम लिया जाय तो इन कष्टों को मिटाने मे बहुत बड़ी सहायता मिलेगी। उसने इस दिशा मे प्रयत्न किया जिसके परिणाम-स्वरूप समाज की रचना हुई। एक के कष्ट मे दूसरे ने हाथ बटाया और इस प्रकार मनुष्यो ने अपने कष्ट को घटाने या मिटाने मे बहुत हद तक सफलता प्राप्त की। समाज के बनने की यही बुनियाद है। समाज—जिसकी बुनियाद ही एक दूसरे के सहयोग और सहायता के उद्देश्य की पूर्ती के लिये हुई हो, उसमे ऐसे विचारो का प्रसार होना कि एक दूसरे की सेवा और सहायता करना एकान्त पाप है, अभाव और विपत्ति मे कोई किसी का निस्वार्थ-भाव

से सेवा और सहायता करे तो भी उसे एकान्त पाप होता है, तो ऐसे भावों का प्रचार करना उसके उद्देश्य के मूल पर कुठाराघात करना है। विपत्तिग्रस्त को सहायता करने, माता-पिता, पति आदि पूज्यजनों की सेवा शुश्रूषा करने, शिक्षा के लिये शिक्षालयों की व्यवस्था करने और रुग्नों के लिये चिकित्सालयों के प्रबन्ध करने आदि सार्वजनिक परोपकार के सब प्रकार के कामों को निस्वार्थ भावसे करने पर भी एक सद्-गृहस्थ को एकान्त पाप होने के भावों की पुष्टि जैन शास्त्रों से होती है—इससे इनकार नहीं किया जा सकता। जैन शास्त्रों में पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस इस प्रकार जीवों की छः काय मानी गई है।

पहुंचाने, मारने आदि में भी हिंसा का होना बताया गया है और हिंसा में पाप माना गया है। हिंसा करने और हिंसा से बचने के लिये तीन करण (करना, करवाना और करने-करवाने का अनुमोदन करना) और तीन जोग (मन, वचन और काया) की व्यवस्था बताई गई है। विचार के देखा जाय तो ऐसी अवस्था में किसी का भी बिना जीवों की हिंसा किये किसी भी कार्य को कर सकना असम्भव है। मुंह से श्वास और शब्द निकलने पर वायु-काय के असंख्यात जीवों के मरने की हिंसा, पानी पीने से अप्काय यानी जलके असंख्यात जीवों के मरने की हिंसा, अग्नि जलाकर काम में लाने पर अग्नि-काय के असंख्यात जीवों के मरने की हिंसा और पृथ्वी के ऊपरका कुछ भाग (दस-पांच अंगुल ऊपरकी सतह का भाग) छोड़ कर अन्य सब भाग पर चलने फिरने आदि किसी प्रकार के स्पर्श करने से पृथ्वी-काय के असंख्यात जीवों के मरने की हिंसा। इस हिंसा से मनुष्य को पाप लगने का जिन शास्त्रों में कथन हो, उन शास्त्रों को मानने वाले का इस संसार में बिना पाप किये एक क्षण भी जिन्दा रह सकना असम्भव है—चाहे वह कितना भी त्यागी और धर्मात्मा क्यों न हो जाय। यदि उस त्यागी को ऐसी हिंसा और पाप से बचना है तो अपना शरीर त्याग करे तो वह भले ही अहिंसक रह सकने की आशा करले वरना सर्वथा असम्भव बात है। यह एक सीधी-सी तर्क है कि प्यासे मरते हुए प्राणी

को एक ग्लास पानी—जो कि असंख्यात जल काय के जीवोंका पिण्ड है (पानी की एक नन्ही-सी बून्द मे असंख्यात जीव माने गये हैं)—पिलाने पर एक जीव को बचाना और एवज मे असंख्यात जीवो को मारने का भागी बनना किसी प्रकारसे भी युक्ति-संगत नहीं, जब कि प्रत्येक जीव की, चाहे वह त्रस हो चाहे स्थावर दोनो की, एक समान स्थिति मानली गई हो। शास्त्रो मे लिखा है कि स्थावर जीवो के भी प्राण हैं, वे स्वासोच्छ्वास लेते हैं, आहार प्राप्त करते हैं और किसी प्रकार के स्पर्श या साधारणत आक्रान्त होने पर उनके शरीर मे अत्यन्त वेदना होती है और मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। ऐसी अवस्था मे एक त्रस जीव को बचाने वाला क्या असंख्यात स्थावर जीवो पर बीतने वाले कष्टो और संकटों को भूल सकता है? शास्त्रों मे यदि ऐसा कथन होता कि इन पांच स्थावर काय के जीवो के जीवन का मूल्य मानव जीवन की अपेक्षा मे नगण्य है, अथवा एक मनुष्य के बचाने मे असंख्यात स्थावर जीवो की हिंसा का होना कोई मूल्य नहीं रखता, तो पाप-धर्म को विवेचना की तुला पर चढ़ाकर निर्णय कर सकनेका मनुष्य को मौका मिलता, परन्तु बात ऐसी नहीं है। शास्त्र तो, चाहे जीव त्रस हो चाहे स्थावर, सब को जीव बतलाकर उनको विराधने मे पाप होने का कथन कर रहे हैं। जीव के मरने—नहीं मरने—के अतिरिक्त पाप धर्म लगने का एक जरिया मनुष्य के लिये और भी बतलाया गया है। वह है मानव के मन

के परिणाम (भाव)। परन्तु इसका कथन करने में जैन शास्त्रों ने अन्य शास्त्रों की तरह इसकी प्रधानता का स्पष्ट दिग्दर्शन नहीं किया। उसी का यह परिणाम हो रहा है कि यथार्थ विवेचना के पश्चात् निस्वार्थ बुद्धि (सेवा भाव) पूर्वक किये हुए संसार के परोपकारी कामों में भी (जिनमें जीव मरने का प्रश्न उपस्थित नहीं होने पर भी) एकान्त पाप का होना बतलाया जा रहा है।

शास्त्रोंने, शास्त्रों को सर्वज्ञ प्रणीत एवम् भगवान्‌के वचन आदि नाना तरहके आकर्षक शब्दों की पुट देकर और अक्षर अक्षर सत्य कह कर तथा अन्यथा समझने वाले को अनन्त संसार परिभ्रमण का भय दिखाकर मानव की बुद्धि को जड़वत बना दिया है। और प्रचारकों के लम्बे समय के प्रचारने आज मनुष्य के दिमाग को अन्धश्रद्धा से इतना अधिक भर दिया है कि वह यह सोचने में भी असमर्थ हो गया है कि ये शास्त्र हमारे जैसे मनुष्यों के द्वारा ही निर्मित हैं। 'शास्त्रों की बातें' शीर्षक मेरे लेखों से यह भली प्रकार प्रमाणित हो चुका है कि वर्त्तमान जैनशास्त्रो में प्रत्यक्ष प्रमाणित होनेवाली असत्य, अस्वाभाविक एवम् असम्भव बातें एक नहीं अनेक हैं। फिर भी जैन शास्त्रो के एक धुरन्धर एवम् संस्कृत प्राकृत भाषा के विद्वान आचार्य यह भावना लिये हुए बैठे हैं कि जैनशास्त्रो की भूगोल-खगोल सम्बन्धी बातें यदि आज के दिन प्रत्यक्ष में अप्रमाणित हो रही हैं और विज्ञान की कसौटी पर गलत उतर रही हैं तो क्या हुआ, एक समय ऐसा आयगा जब जैनशास्त्रों

की प्रत्येक बात सत्य प्रमाणित हो जायगी। ऐसे सज्जनों से मेरा एक प्रश्न है कि वर्तमान पृथ्वी, जो गेन्द की तरह एक गोल पिण्ड है, शायद आपकी भावना के अनुसार ढहकर चपटी हो जाय, और उसकी पचीस हजार माइल की परिधि टूटकर असंख्यात योजन लम्बा चौड़ा चपटा स्थल बन कर फैल जाय, परन्तु एक गोलाई के व्यास की परिधिका घटना कैसे सम्भव होगा जो जैन शास्त्रों के बनाये हुये Formula (गुर) से गणना करने पर प्रत्यक्ष के माप से बड़ा और गलत प्रमाणित हो रहा है। अब तो शास्त्रों की उन बातों से जो प्रत्यक्ष में असत्य प्रमाणित हो रही है, नई इनकार करना अथवा उनके लिये आगा-पीछा करके घुमाना फिराना येन केन-प्रकारेण असत्य को सत्य बनाने का असफल प्रयास करना केवल अपने आपको हास्यास्पद बनाना है। समय ऐसा आ गया है कि इन शास्त्रों को हम यदि सब प्रकार से श्रेष्ठ बनाना चाहते हैं तो हमे उनको विकार से रहित करना होगा। इनमें छिपी हुई असत्य बातों को निकालकर बाहिर करना होगा। संसार में विषमता फैलाने वाले विधि-निषेधों को हटाकर इनके स्थान पर मानवोपयोगी व्यवस्था स्थापित करनी होगी। अब 'बाबा वाक्यम् प्रमाणम्' का समय नहीं रहा।

आवश्यकता है वर्त्तमान संसारके विकास पाये हुए अनुभव तथा विज्ञानकी जानकारी और शुद्ध विवेक एवम् निर्मल बुद्धिके साथ अदम्य साहस की। इसके लिये सब से सरल योजना यह है कि जैन कहलाने वाले बडे बड़े विद्वान् एवम् आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के अनुभवी मनीषियों की एक महती परिषद् स्थापित हो और उसके द्वारा इन शास्त्रो का शोधन और निर्णय हो। जैन शास्त्र जैनाचार्यों की पैतृक सम्पत्ति है। उनका कर्त्तव्य है कि इन शास्त्रों के सुधार और बेहतरी के लिये कोई योजना काम मे लावे परन्तु खेद है कि आजकल प्राय साधु-संस्थाओं को एक दूसरे की कटु आलोचना से ही फुरसत नहीं मिलती। गतवर्ष कतिपय विद्वान जैनाचार्यो से इन शास्त्रों के विषय मे वार्त्तालाप करने का मुझे सु-अवसर मिला। उनसे जो वार्त्तालाप हुआ वह उसी प्रकार यहा दिया रहा है जिससे स्थिति पर कुछ प्रकाश पड़े। तेरापंथी-युवक-संघ लाडनू (मारवाड) द्वारा प्रकाशित बुलेटीन नम्बर २ मे 'शास्त्रो की बातें' शीर्षक मैंने एक लेख दिया था जिसमे चन्द्र-प्रज्ञप्ति, सूर्य-प्रज्ञप्ति सूत्रके दसम प्राभृत के सतरहवे प्रतिप्राभृतमे भिन्न भिन्न नक्षत्रों मे भिन्न भिन्न प्रकार के भोजन करके यात्रा करने पर कार्य सिद्धि होनेका कथन है और इस भोजन विधान मे ६।१० स्थानो मे भिन्न भिन्न प्रकारके मासोंके भोजन का भी कथन है यह बतलाया था। उस समय जैनश्वेताम्बर तेरापन्थ सम्प्रदाय के कुछ सन्त-मुनिराजो से इस सम्बन्ध मे मालूम

हुआ कि इस स्थान में जो यह मांसों के नाम दिखाई देते हैं वे मांस नहीं हैं परन्तु वनस्पतियों के नाम हैं। तब से इन नामों के विषय में अन्य सम्प्रदाय के किसी विद्वान संत-मुनिराज से पूछकर निश्चय करने की मेरी इच्छा थी। कार्यवशात् तारीख १२ जुलाई सन १९४४ श्रावण वदि ७ सं० २००१ को मैं बीकानेर गया। वहां पर मेरे मित्र श्री मंगलचन्दजी शिवचन्द-जी साहब श्रावक से मिला तो श्री शिवचन्दजी साहब ने मुझसे कहा कि आजकल यहां पर जैनाचार्य श्री विजयवल्लभ सूरिजी महाराज विराजते हैं। वे उच्च कोटि के विद्वान हैं और जैन शास्त्रों के तो अद्वितीय पण्डित हैं। आप उनके दर्शन कर और जैन शास्त्रों के विषय में [illegible] पूछना हो तो पूछें। मैंने सोचा यह बहुत सुन्दर संयोग मिला है इस अवसर का लाभ अवश्य उठाना चाहिये। श्री शिवचन्दजी साहब के साथ मैं श्री आचार्य महाराज के पास उपस्थित हुआ।

हुआ कि इस स्थान में जो यह मांसों के नाम दिखाई देते हैं वे मांस नहीं हैं परन्तु वनस्पतियों के नाम हैं। तब से इन नामों के विषय में अन्य सम्प्रदाय के किसी विद्वान संत-मुनिराज से पूछकर निश्चय करने की मेरी इच्छा थी। अकस्मात् तारीख १२ जुलाई सन १९४४ श्रावण वदि ७ सं० २००१ को मैं बीकानेर गया। वहां पर मेरे मित्र श्री मंगलचन्दजी शिवचन्द-जी साहब झाबक से मिला तो श्री शिवचन्दजी साहब ने मुझसे कहा कि आजकल यहां पर जैनाचार्य श्री विजयवल्लभ सूरिजी महाराज विराजते हैं। वे बड़े भारी विद्वान हैं और जैन शास्त्रों के तो अद्वितीय पण्डित हैं। आप उनके दर्शन कर और जैन शास्त्रों के विषय में कुछ पूछना हो तो पूछें। मैंने सोचा यह बहुत सुन्दर संयोग मिला है इस अवसर का लाभ अवश्य उठाना चाहिये। श्री शिवचन्दजी साहब के साथ मैं श्री आचार्य महाराज के पास उपस्थित हुआ।

लगते जा रहे हैं और संसार के परोपकार के सब कामों को निस्वार्थ भाव से करने पर भी जैन शास्त्रों के आधार पर एकान्त पाप होना सिद्ध किया जा रहा है। आपने इसके सम्बन्ध में क्या प्रयत्न किया। मैं तो यही कहूँगा कि संसार के परोपकार के कामों को करने में जिन शास्त्रों के द्वारा पाप सिद्ध होता हो हम तो उन शास्त्रों को मानव समाज की व्यवस्था को बिगाड़ने वाले समझते हैं और समाज की व्यवस्था को बिगाड़ने वाले शास्त्रों का न रहना ही हम उचित समझते हैं। इस प्रकार कहकर मैं उठ खड़ा हुआ और आचार्य महाराज से प्रार्थना की कि मेरे प्रति आपके मन में किसी प्रकार क्षोभ उत्पन्न हुआ हो तो मैं बारम्बार क्षमाता हूँ।

भी कहते हैं, के दर्शन किये। वन्दना नमस्कार कर सुख साता पूछकर मैंने अपना परिचय दिया तो परिचय सुनते ही बहुत हर्षित हुए। उनसे भी जैन शास्त्रों की असत्य बातों को हटाये जाने के लिये प्रार्थना की तो आप फरमाने लगे कि आपके लेख मैंने ध्यान-पूर्वक पढ़े हैं शास्त्रों की असत्य प्रमाणित होनेवाली बातों का हटाना नितान्त आवश्यक है, वरना ऐसा समय आने वाला है कि इनके लिये पश्चात्ताप करना पड़ेगा। मैंने अर्ज की कि महाराज, आपने तो अपने जीवन में जैन साहित्य का बहुत बड़ा प्रकाशन किया है इस काम पर भी गौर फरमाकर किसी प्रकार की योजना काम में लावें। तो आप फरमाने लगे कि अब मैं बहुत वृद्ध हो गया हूं। मेरा स्वास्थ्य भी ठीक नहीं, मेरी शक्ति के बाहिर की बात है। इसके पश्चात् कार्तिक सुदि १ के दिन मैं वापिस सुजानगढ़ पहुंचा।

सहयोग दिया था इसी प्रकार इस समय भी भगवान वीरके शिष्य कहलाने वालों को इन शास्त्रों के विषय में अपने अपने अनुभव तथा अपने अपने विचार और परिवर्तन हो सकने वाली बातों के लिये अपने अपने सुझाव रखते हुवे सहयोग देकर इस कार्य को सफल करनेका प्रयास करना चाहिये। परन्तु इस समय तो ऐसी विषम अवस्था हो रही है कि व्यर्थके वाद-विवाद में समय का दुरुपयोग किया जा रहा है।

रहे हैं और दूसरी सम्प्रदाय वाले उन्हीं सूत्रों के आधार पर बचाने में तो पाप मान ही रहे हैं अपितु मारने वाले कसाई को "मतमार" ऐसा कहने तक में एकान्त पाप मान रहे हैं। किसी भी सम्प्रदाय पर यह आरोप करना तो सरासर मूर्खता होगी कि अमुक सम्प्रदाय के व्यक्ति स्वार्थी एवम् धूर्त हैं इसलिये अपने स्वार्थ के लिये अपने मत की बात अमुक प्रकार से बता रहे हैं।

द्वारा इनका निर्णय करावें। क्या कारण है कि समाज में इतनी जबरदस्त विषमता फैलानेवाले विषयों के लिये तो हम लोगों ने खामोशी अख्तियार कर रखी है और भूतकाल में बीती हुई व्यर्थ की बातों के लिये सब एक होकर आकाश पाताल के कुलाबे मिलाने लगते हैं। थोड़े ही दिनों की बात है, श्री धर्मानन्द कोसाम्बी ने किसी पुस्तक में यह लिख दिया था कि जैन शास्त्रों में साधु के लिये मांस आहार लाने का कथन है। बस इसी पर सब मिलकर कोसाम्बी जी को कोसने लगे। अभी तक भी [illegible] निकालने का ताना जारी है।

की कसौटी में कोई संशय नहीं रह सकता। अभिधान राजेन्द्र कोषकार के अनुसार कर्मग्रन्थ में लोक के माप के सम्बन्ध में यों लिखा है—

"चउदस रज्जू लोओ, बुद्धिकओ होइ सत्त रज्जू घणो।

किन्तु उक्त माप सिद्ध न होने से सही कैसे मान लिया जाय ? जब कितने ही जैन विद्वानों के सामने यह विरोधाभास रक्खा गया तो उन्होंने या तो केवल-ज्ञानियों पर [illegible] इसका निराकरण रख कर बात खतम कर दी [illegible] को कहा कि ऐसा तरीका [illegible]

बोलेगा ? इस पर कोई कहे—"महावीर ही वीतराग सर्वज्ञ थे, बुद्ध वीतराग सर्वज्ञ नहीं थे, यह बात कैसे मानी जाय ?" तो अन्तमे उत्तर मिलेगा कि "शास्त्रमे लिखा है"। यह तो अन्योन्याश्रय दोप हुआ। क्योकि शास्त्र तबसच्चे माने जायँ जब महावीर सच्चे सिद्ध हो और महावीर तब सच्चे माने जायँ जब शास्त्र सच्चे सिद्ध हो। इसलिये शास्त्र न तो अपनी प्रमाणता सिद्ध कर सकते हैं, न अपने उत्पादक की। अगर वे स्वत प्रमाण माने जायँ तो दुनिया भरकी सभी पोथियाँ प्रमाण हो जावंगी। ऐसी हालतमे जैनशास्त्रोमे कोई विशेषता न रहेगी। इसके अतिरिक्त एक दूसरा प्रश्न यह भी खडा होता है कि शास्त्रोके नाम पर जो वर्तमानमे जनसाहित्य प्रचलित है उसमे कौनसी पुस्तक भगवान् महावीरकी बनाई हुई है ? एक भी पुम्तक ऐसी नहीं है जो महावीर रचित हो। यहाँ तक कि भगवान् महावीरके पाँच सौ वर्ष पीछेकी भी कोई पुस्तक नही मिलती। श्वेताम्बर सम्प्रदायमे प्रचलित ३२ या ४५ सूत्रग्रथ महावीर स्वामीके शिष्य गौतम गणधर रचित बताये जाते है, परन्तु इनकी भापा भगवान् के समय की भापा नहीं है। यह महाराष्ट्री प्राकृत है, इसमे मागधीका सिर्फ एकाध ही प्रयोग है। दूसरी बात यह है कि जैनशास्त्रोके अनुसार भगवानके १६२वर्ष पीछे तक उनका उपदेश पूर्णरूपसे सङ्कलित रहसका, इसके बाद तो लुप्त होने लगा और उसमे बाहिरी या सामयिक साहित्य भी मिलने लगा। क़रीब हजार

खोज निकालनेके साधन हैं। जिस प्रकार एक जज, अनेक गवाहोंकी बातें सुनकर अपनी बुद्धिसे सत्य असत्यका निर्णय करता है उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्यको शास्त्रोंकी बातें सुनकर सत्यासत्यका निर्णय करना चाहिये। जिस प्रकार प्रत्येक गवाह ईश्वरकी क़सम खा कर सच बोलनेकी बात कहता है परन्तु गवाहो के परस्परविरुद्ध कथन से तथा अन्य विरुद्ध कथनोसे उनमे अनेक मिथ्यावादी सिद्ध होते हैं इसीप्रकार अनेक शास्त्र महावीर या किसी परमात्माकी दुहाई देने पर भी परस्पर विरुद्ध कथनसे या युक्तिविरुद्ध कथनसे मिथ्या सिद्ध हो सकते हैं। इसलिये शास्त्रके नामसे ही धोखा खा जाना अज्ञानता है।

यह समझना कि 'शास्त्रकी परीक्षा तो हम तब करें जब हमारी योग्यता शास्त्रकारोंसे ज्याद हो' भूल है। शास्त्रकारो के सामने हमारी योग्यता कितनी भी कम क्यो न हो, हम उनके शास्त्रोकी जाच कर सकते है। गायन मे हमारी योग्यता बिलकुल न हो तो भी दूसरे मनुष्यके गानेका अच्छा बुरापन हम जान सकते है। मिठाईके स्वादकी परीक्षा करनेके लिये यह आवश्यक नहीं है कि हम मिठयासे ज्याद या उसके बराबर मिठाई बनानेमे निपुण हों। हम व्याख्यान देना बिलकुल न जानते हों, फिर भी दूसरोंके व्याख्यानकी समालोचना कर सकते हैं। यदि ऐसा न होता तो आज हम अपनेको स्वाभिमानके साथ जैनी क्यो कहते ? जब हम महावीरसे ज्याद. ज्ञानी नहीं

प्रकार परीक्षाप्रधानी भी थोडो बहुत आज्ञा का उपयोग करता है उसी प्रकार आज्ञाप्रधानी परीक्षा का भी उपयोग करता है। हाँ, परीक्षाप्रधानीका दर्जा ऊँचा है, इसलिये परीक्षाप्रधानी को जहाँ तक बने आज्ञाकी तरफ न झुकना चाहिये क्योंकि इससे उसका अध पतन होगा और आज्ञाप्रधानीको आज्ञा ही मानकर न रह जाना चाहिये क्योंकि इससे उसकी उन्नति रुकेगी।

जिस प्रकार जनकुल मे उत्पन्न होनेसे या जैनधर्मका पक्ष होनेसे किसीको श्रावक कहने लगते है परन्तु इससे वह पंचम-गुणस्थानवर्ति नहीं हो जाता, इसी प्रकार आज्ञामात्रसे कोई सम्यक्त्वी नहीं हो जाता। जिस प्रकार श्रावको मे नाममात्रके पाक्षिक श्रावकका उल्लेख किया जाता है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि-योमे नाममात्र के आज्ञासम्यक्त्वीका उल्लेख किया जाता है। खैर, पाठकोंको इतना ध्यानमे रखना चाहिये कि जिस विषयमे मनुष्य परीक्षा नहीं कर सकता, विरुद्धाविरुद्धता नहीं जान सकता वहीं आज्ञासे काम लेना चाहिये। कोई आज्ञा सिद्धान्त से विरुद्ध जाती हो पक्षपातयुक्त मालूम पडती हो, युक्तिविरुद्ध हो तो वह शास्त्रमे लिखी होने पर भी कुशास्त्रकी चीज है। उस पर श्रद्धान करना मिथ्यात्वी हो जाना है।

किसी धम के शास्त्रो द्वारा धर्माधर्म और सत्यासत्य का निर्णय करने के पहिले हमे उस धर्मके मूल सिद्धान्त जान लेना चाहिये, और उसके सूक्ष्म विवेचनोको उस धर्मके मूलसिद्धान्तों की कसौटी पर कसना चाहिये। यदि वे उस धर्म के मूल-

मे ले जाने वाला है, उसका विधान अगर किसी ग्रंथ मे पाया जाता होतो वह ग्रथ तुरन्त अप्रमाण समझ लेना चाहिये। अब हम अपने वक्तव्य को ज़रा और स्पष्टतासे रखना उचित समझते हैं।

अहिंसा सत्य आदि के समान ब्रह्मचर्य भी एक प्रकारका धर्म है, क्योंकि उससे रागादि कषायें कम होती है। इसलिये इस विषय की जो क्रिया रागादि कषायो को कम करने वाली हैं वह धर्म है, कषायो को बढाने वाली हैं वह अधर्म है। यदि इन नियमों मे कोई लोकाचार की क्रियाएँ मिला दी जायँ तो उसकी क्रिया लोकाचार के मुआफिक ही होगी न कि धर्म के मुआफिक। धर्म उतना ही है जितनी कषाय की निवृत्ति होती है। अगर किसी पुरुष के हृदयमे स्त्री राग उत्पन्न हुआ तो उसे रोकना ब्रह्मचर्य है। अगर उसे वह पूर्ण रूपसे रोकले तो महाव्रत हो जायगा। अगर वह पूर्ण रूपसे न रोक सके किन्तु किसी सीमाके भीतर आजाय तो अणुव्रत कहलायगा, क्योंकि इससे उसकी राग परिणति सीमित करनेके लिये उसने एक स्त्री को चुन लिया अर्थात् विवाह कर लिया तो यह ब्रह्मचर्याणुव्रत कहलाया। वह एक स्त्री चाहे कुमारी हो चाहे विधवा, ब्राह्मनी हो या शूद्र, आर्य हो या म्लेच्छ, स्वदेशीय हो या विदेशीय, उससे रागपरिणति न्यून होनेमे कोई बाधा नहीं आती। अपनी सासारिक सुविधाके लिये इनमेसे किसी खास तरह का चुनाव क्यो न किया जाय परन्तु धार्मिक दृष्टिसे उनमे

उनके लिये बुभुक्षापूर्ति मूल उद्देश है। परन्तु यहाँ तो मूल उद्देश रागादि कषायों को कम करना या अहिंसादि पांच यम है। अभक्ष्यभक्षण से हिंसा होती है इसलिए वह मूल उद्देश का विघातक ही है। रही निकृष्टता की बात, सो यदि वह वस्तु मूल उद्देशकी बाधक नहीं है तो निकृष्ट हो ही नहीं सकती। अब रही लौकिक निकृष्टता (जूनी पुरानी अल्पमूल्य आदि) सो ऐसी निकृष्टता धार्मिकता मे बाधक नहीं है, बल्कि कभी कभी तो वह साधक हो जाती है। एक आदमी नये मकान, और नये ठाठ-बाठ की कोशिश करता है। दूसरा आदमी पुराने मकान और पुराने ठाठबाठ मे ही संतोष कर लेता है। ऐसी हालतमे दूसरा आदमी ही ज्याद. धर्मात्मा है। इसलिए निकृष्टता का आरोप भी बिलकुल व्यर्थ है।

खैर, शास्त्र परीक्षा के कुछ और उदाहरण देखिये। यह बात सिद्ध है कि कामवासना को सीमित करने के लिये विवाह है। अगर किसी मे यह वासना पैदा ही न हुई होतो उसका विवाह करना कामवासना का सीमित करना नहीं है बल्कि पैदा करना है। अब्रह्मसे ब्रह्मकी तरफ़ झुकना तो धर्म है और ब्रह्मसे अब्रह्मकी तरफ़ झुकना पाप है। यह तो कषायों का बढाना है। अब यदि कोई कहे कि "कामवासना पैदा हुई हो चाहे न पैदा हुई हो, परन्तु अमुक उम्रके भीतर विवाह कर ही देना चाहिये, विवाह न करनेसे पाप होगा"। तो समझ लो ऐसा कहने वाला कोई पाप-प्रचारक धूर्त है। और

न मुझे महावीरमे पक्षपात है न कपिलादिकमे द्वेष, जिसका वचन युक्तियुक्त हो उसी का ग्रहण करना चाहिए।

क्या शास्त्रोंकी दुहाई देने वाला कोई धम, ऐसी गर्जना कर है ? यदि नहीं तो क्या ऐसी गर्जना करने वाला धर्म अपने नाम पर प्रचलित हुए युक्तिविरुद्ध वचनोंको मनवाने की धृष्टता कर सकता है ? यदि नहीं, तो हमे शास्त्रोंकी चोटी, तर्कके हाथमे देदेना चाहिये। शास्त्रोंको जजका स्थान नहीं किन्तु गवाहका स्थान देना चाहिए, और प्रत्येक बातका विचार करके निर्णय करना चाहिए। रविषेणाचार्य कहते हैं—जो जडबुद्धि मनुष्य हैं वे नीच, धर्मशब्दके नाम पर अधर्म का ही सेवन करत हैं।

धर्मशब्द मात्रेण बहुश प्राणिनोऽधमा. ।
अधर्ममेव सेवते विचारजड चेतस ॥

पद्मपुराण ६-२७८ ।

धर्म के विषयमे सदा सतर्क रहने की जरूरत है। तर्कशून्य हुए कि गिरे। क्योंकि धर्म के नाम पर और जनधर्मके नाम पर भी इतने जाल और गड्ढे तैयार किये गये हैं कि तर्कके विना उनसे बचना असम्भव है। जिन शास्त्रों का सहारा लिया जाता है वे तो खुद जाल और गड्ढेका काम करते हैं। उन्हींसे तो बचना है। भगवान् महावीरके पीछे अनेक गण, गच्छ, संघ हो गये, समय समय पर जिसको जो कुछ जँचा या जिसने जिसमे अपना स्वार्थ देखा वैसा ही लिख मारा। अब

[श्री घनश्यामदासजी बिड़ला विरचित 'बिखरे-विचार' से—
मार्च, १९३३]

शास्त्र भी और अक्ल भी

हिन्दू-समाज मे कोई सुधार की बात चली कि शास्त्र मोर्चे पर आ डटे। यही दशा अस्पृश्यता-निवारण आंदोलन मे भी हुई है। शास्त्रोके पन्नो की इस समय काफी उलट-पुलट है यहाँ तक कि दोनो पक्षवाले शास्त्रो के अवतरण दे रहे है। गाधीजी ने भी पडितोका आह्वान किया और उनसे शास्त्रोंकी व्यवस्था पूछी। पडितो ने भी व्यवस्था सुनायी और श्री भगवान्दास जी जो शास्त्रोके धुरन्धर विद्वान् है, इन व्यवस्थाओको काशीके 'आज' पत्र के साथ 'क्रोड-पत्र' के रूपमे प्रकाशित कर रहे है, जो सचमुच पढने और मनन करने योग्य है।

शास्त्रो की इस छान-बीनका यह प्रयत्न इस तरहसे मुबारक है क्योकि कम-से-कम इससे पुराने आर्य-इतिहास का कुछ पता तो चल ही जाता है। किन्तु जो बात सीधी-सादी बुद्धि द्वारा समझ मे आ सकती हो, उसमे ख्वाहमख्वाह शास्त्र को आवश्यकता से अधिक महत्व देना खतरनाक भी है।

उपनिषद् बने, यहाँ तक कि अल्लोनिषद् भी बन गया। ज्यों-ज्यो बुद्धिका विकाश बढा शास्त्र साहित्य भी बढता गया। शास्त्रके लिखने वालो ने देश-कालको सामने रखकर कुछ अच्छी-अच्छी बातें लिखीं, उन्हीं शास्त्रोंमे पीछेसे ऋषियों ने देश काल का परिवर्त्तन देखकर फिर कुछ और जोड दिया। इसी तरह कुछ लोगोने अपने स्वार्थ की बेसिर-पेंर की बेहूदा बातें भी जा कहीं। जैसी जिस समय आवश्यकता हुई उसी तरह से यह जोड-तोड भी बढता गया। आर्य लोगोके रहन-सहन, आचार-विचार और शास्त्रोका यही इतिहास है। इसलिये परस्पर विरोधी बातो का भी शास्त्रोंमे होना स्वाभाविक है। हिन्दू शास्त्रो की महत्ता ही यह है कि विचार-स्वातन्त्र्य को कभी आसन-च्युत नहीं होने दिया। यही हमारी खूबी और ताकत रही है। इसीके बल पर हम आजतक जिन्दा है। हम निभा ले जाये तो हमारी यह खूबी ही हमारी जिन्दगी का बीमा होगी।

आर्य शास्त्रोंमे काफी कुन्दन है। इतना है कि अन्य किसी मजहबी ग्रन्थमे नहीं, किन्तु आम के साथ गुठली भी है, रेशे भी है, इसलिये विवेक की आवश्यकता तो है ही। जो सर्वमान्य शास्त्र माने जाते है उनमे भी ऐसी बातो की कमी नहीं है, जो बुद्धि के प्रतिकूल और अप्रामाणिक और इसलिये अमान्य है। भागवतमे लिखे गये भूगोलको क्या हम मानेंगे? पारद और गंधक की उत्पत्ति की शिक्षा आचार्य राय से लेना

वेदो का वह भी एक भाग है। इस तरह हमें अपने शास्त्र की कल्पना को भी विस्तृत बनाना होगा और अन्त मे इस नतीजे पर पहुचना होगा कि जितना भी ज्ञान-समूह है वह सभी शास्त्र है, और जो सच्चे ज्ञान से भिन्न है, वह चाहे संस्कृत भाषा मे हो चाहे अरबी या अंग्रेजी मे, सारा अशास्त्र है।

हिन्दू समाज मे वर्षोंसे अनेक विभाग बन गये हैं। अदृश्यता है, अस्पृश्यता है, अग्राह्यजलता है, असहभोजिता है और अवैवाहिकता है। इनमे अन्तिम दो विभागो से हम किसी को चोट नहीं पहुँचाते। हम किसी के यहाँ खाने को नहीं जाते, इसमे हम किसी का अपमान नहीं करते। न विवाह-शादी ही ऐसी चीज है कि किसी से सम्बन्ध करने से इनकार करने मे हम किसी के साथ अन्याय करते हों। इसलिए असह-भोजिता और अवैवाहिकता कोई पाप नहीं, किन्तु किसी मनुष्य के दर्शन-मात्र को पापमय मानना (अदृश्यता) जैसे कि मद्रास प्रान्त मे एकाध जगह प्रचलित है, या किसी के स्पर्श मात्र को पातक समझना (अस्पृश्यता) ये दोनो ही अभिमान-मूलक पापमय वृत्तियां हैं, जो हिन्दू धर्म की नाशक है।

शास्त्र कैसे कह सकता है कि हमारा यह अन्याय धर्म हो सकता है? इस सम्बन्ध में हमारी अक्ल की गवाही क्या काफी नहीं है? जो काम समाज की भलाई का हो, सदय हो,

वादियों की बातों और प्रयोगों पर भी पूरा प्रकाश डाल कर उनका निराकरण किया गया है। विभिन्न युक्ति-प्रमाणों और वैज्ञानिक विवेचनाओं के साथ आत्मा की अमरता का खण्डन और देहात्मवाद का मण्डन करते हुए जीव=शरीर की अद्वैतता सिद्ध की है। मूल्य १) रु०

(४) पुनर्जन्मवाद मीमांसा—इसमें आत्मा के अस्तित्व और उसके पूर्व एवं पुनर्जन्म सम्बन्धी सिद्धान्त (देहान्तर वाद) तथा कर्मफल सम्बन्धी शास्त्रीय व्यवस्था की बड़ी ही विद्वत्तापूर्ण मार्मिक आलोचना की गई है और प्रत्यक्ष प्रयोग-सिद्ध वैज्ञानिक आधार पर शरीर-अध्यात्म को स्थापित किया गया है। इसके लेखक संस्कृत और अंग्रेजी के प्रकाण्ड विद्वान, एक वयोवृद्ध सन्यासी हैं, जिनके शिर के बाल वैदिक वाङ्मय की छानबीन और दार्शनिक तत्त्व-चर्चा में ही पके हैं।
—मूल्य १) रु०

(५) ईश्वर और धर्म केवल ढोंग है!—विषय नाम ही से प्रकट है। इसके प्रथम संस्करण ने सारे धार्मिक जगत् में काफी हल चल मचा दी थी। द्वितीय संस्करण मूल्य १) रु०

(६) गुलामी की जड धर्म और ईश्वरवाद है!—प्रत्येक व्यक्ति के पढ़ने और प्रचार करने योग्य ट्रैक्ट मूल्य)॥ सैंकड़ा २) रु० (प्रकाशित)

(७) राष्ट्र धर्म—अन्धविश्वास और सामाजिक रूढ़ियों की मूढ़ता को जड़ से नष्ट करने वाली श्री० सत्यदेव विद्यालंकार लिखित धार्मिक क्रान्तिकारी पुस्तक। द्वितीय संस्करण (प्रकाशित) मूल्य १) रु० मिलने का पता—

मंत्री. बुद्धिवादी संघ, ४६, स्ट्रान्ड रोड, कलकत्ता।